अक्टूबर–2020

वर्ष-84 । अंक-10 । ₹-19 प्रति । ₹-220 वार्षिक

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

प्रखर-प्रज्ञा

सजल-श्रद्धा

11 आदिशक्ति के नौ रूप

18 भक्ति साधन भी है और साध्य भी

28 मर्यादा पुरुषोत्तम राम–एक ज्योतिषीय परिक्रमा

50 स्वाध्याय से सँवारें जिंदगी

(अक्टूबर, 1945)

जीवन को तपस्यामय बनाइए

प्रकृति का नियम है कि संघर्ष से तेजी आती है। रगड़ और घर्षण यद्यपि देखने में कठोर कर्म प्रतीत होते हैं, पर उन्हीं के द्वारा सौंदर्य का प्रकाश होता है। सोना तपाये जाने पर निखरता है। नानाविधि कष्टदायक संस्कारों पर संस्कृत होने से ही किसी वस्तु को महत्त्व प्राप्त हुआ है। धातु का एक रद्दी-सा टुकड़ा जब अनेक विधि कष्टदायक परिस्थितियों के बीच में होकर गुजर जाता है, तब उसे भगवान की मूर्ति होने का या ऐसा ही अन्य महत्त्वपूर्ण गौरवमय पद प्राप्त होता है।

जीवन वही निखरता है, जो कष्ट और कठिनाइयों से टकराता रहता है। विपत्ति, बाधा और कठिनाइयों से जो लड़ सकता है, प्रतिकूल परिस्थितियों से युद्ध करने का जिसमें साहस है, उसे ही--सिर्फ उसे ही जीवन-विकास का सच्चा सुख मिलता है। इस पृथ्वी के परदे पर एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं हुआ, जिसने बिना कठिनाई उठाए, बिना जोखिम ओढ़े, कोई बड़ी सफलता प्राप्त कर ली हो।

कष्टमय जीवन के लिए अपने आप को खुशी-खुशी पेश करना—यही तप का मूल तत्त्व है। तपस्वी लोग ही अपनी तपस्या से इंद्र का सिंहासन जीतने में और भगवान का आसन डुला देने में समर्थ हुए हैं। मनोवांछित परिस्थितियाँ प्राप्त करने का एकमात्र-केवल मात्र-ही साधन इस संसार में है। और वह है—तपस्या। स्मरण रखिए सिर्फ वे ही व्यक्ति इस संसार में महत्त्व प्राप्त करते हैं, जो कठिनाइयों के बीच हँसना जानते हैं, जो तपस्या में आनंद मानते हैं।

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अपनी अंतरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करे।

अखण्ड ज्योति

प्रखर प्रज्ञा सजल श्रद्धा

ॐ वन्दे भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम्।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा माता
भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी, मथुरा

दूरभाष नं० (0565) 2403940
2400865, 2402574
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039

कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।

नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

प्रातः 10 से सायं 6 तक

वर्ष : 84
अंक : 10
अक्टूबर : 2020
आश्विन : 2077
प्रकाशन तिथि : 01.09.2020

वार्षिक चंदा

भारत में : 220/-
विदेश में : 1600/-
आजीवन (बीसवर्षीय)
भारत में : 5000/-

संस्कृति

भारतीय संस्कृति के मूल में सामाजिक समरसता व वैचारिक साम्य को स्थापित करने का भाव रहा है। समस्त परंपराएँ भी इसी संतुलन को प्राप्त करने की ओर इशारा करती रही हैं। नीति की स्थापना एवं अनीति का उन्मूलन ही भारतीय चिंतन की समृद्धता का प्रतीक है। जप-पूजा-कर्मकांड करना, परंतु दुष्टता को पनपने देना सदाचार की परिभाषा नहीं हो सकती है। अध्यात्म कभी भी एकांगी चिंतन का पर्याय नहीं हो सकता। यह सत्य है कि किसी से वैर न करना, किसी से न लड़ना, दूसरों को क्षमा करना, दया, करुणा, अहिंसा, मानवता के मूलभूत सिद्धांत हैं, परंतु इनके साथ ही धर्म की रक्षा करने के लिए अपनी प्रतिबद्धता घोषित करना भी अध्यात्म का ही मूलमंत्र है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण का यह उद्घोष—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

इसी पुरातन सत्य का प्रतीक है कि ध्वंस के बिना सृजन की संभावना को स्वीकार नहीं किया जा सकता। बीज गलेगा नहीं तो वृक्ष के जन्म लेने की संभावना सत्य नहीं हो सकती। माँ की प्रसव पीड़ा से गुजरे बगैर नई आत्मा के जन्म की संभावना कैसे सत्य हो सकती है ? धर्म की ये दो धाराएँ एकदूसरे से विपरीत दिखते हुए भी, एकदूसरे से वैसे ही जुड़ी हुई हैं, जैसे दिन और रात; जैसे धरती व पहाड़ और जैसे नदी व सागर। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व, एकांगी व बेमानी हो जाता है। इसीलिए धर्म यही है कि उदारता बरती जाए, परंतु अनीति व अन्याय को पनपने का अवसर प्रदान न किया जाए अन्यथा सृष्टि के बिखराव के लिए हम ही जिम्मेदार होंगे। ❑

▶ 'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष ◀

विषय सूची

- संस्कृति 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  जन-आंदोलन से रोका जा सकता है अन्न का दुरुपयोग 5
- योग-साधना के सबल आधार—यम-नियम 7
- क्रोध की चिनगारी से बचें 9
- **पर्व विशेष (आश्विन नवरात्र पर)**
  आदिशक्ति के नौ रूप 11
- सोच-समझकर खाएँ 13
- दूसरों की बुराई न करें 15
- भक्ति साधन भी है और साध्य भी 18
- अहं का विसर्जन एवं समर्पण 20
- अनसुनी न करें अंतरात्मा की आवाज 22
- स्व-संकेतों से करें व्यक्तित्व का निर्माण 24
- बोया पेड़ बबूल का, आम कहाँ से होय? 26
- मर्यादापुरुषोत्तम राम—
  एक ज्योतिषीय परिक्रमा 28
- आरामपसंदगी बना रही है हमें बीमार 31
- सीखने की कोई उम्र नहीं 33
- **चेतना की शिखर यात्रा—217**
  राजनीति से हटकर 35
- अमृतवर्षणीय है शरद पूर्णिमा 38
- मैं कौन हूँ? 40
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—138**
  किशोरों की व्यावहारिक समस्याओं का मनोवैज्ञानिक अध्ययन 41
- एक महान विभूति—महर्षि अरविंद 44
- वायु-प्रदूषण का कहर 46
- **युगगीता—245**
  तेज, क्षमा, धृति और अद्रोह होते हैं दैवी प्रकृति के गुण 48
- स्वाध्याय से सँवारें जिंदगी 50
- सेवा और संवेदना का प्रतीक है नारी 52
- **परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी—1**
  गायत्री की पंचकोशी साधना (प्रथम किस्त) 54
- **विश्वविद्यालय परिसर से—184**
  वैश्विक चुनौती के मध्य नूतन पहलें करता विश्वविद्यालय 60
- **अपनों से अपनी बात**
  युग-परिवर्तन की वेला में निर्णय का समय अब आ पहुँचा 63
- युगऋषि की अमृतवाणी (कविता) 66

आवरण पृष्ठ परिचय

प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा पर गणपति की उपस्थिति

अक्टूबर-नवंबर, 2020 के पर्व-त्योहार

शुक्रवार	02 अक्टूबर	गांधी, शास्त्री जयंती
मंगलवार	13 अक्टूबर	कमला एकादशी
शनिवार	17 अक्टूबर	नवरात्रारंभ
गुरुवार	22 अक्टूबर	सूर्य षष्ठी
रविवार	25 अक्टूबर	विजयादशमी
मंगलवार	27 अक्टूबर	पापांकुशा एकादशी
शुक्रवार	30 अक्टूबर	शरद पूर्णिमा
शनिवार	31 अक्टूबर	वाल्मीकि जयंती
बुधवार	04 नवंबर	करवा चौथ
रविवार	08 नवंबर	अहोई अष्टमी
बुधवार	11 नवंबर	रमा एकादशी
गुरुवार	12 नवंबर	धनतेरस
शनिवार	14 नवंबर	रूप चतुर्दशी/दीपावली/बाल दिवस
रविवार	15 नवंबर	अन्नकूट
सोमवार	16 नवंबर	भाईदूज/बेसतुबरस
शुक्रवार	20 नवंबर	सूर्य षष्ठी
बुधवार	25 नवंबर	देवप्रबोधिनी एकादशी
सोमवार	30 नवंबर	गुरुनानक जयंती

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** ***—संपादक***

विशिष्ट सामयिक चिंतन

जन-आंदोलन से रोका जा सकता है अन्न का दुरुपयोग

अन्न ही ब्रह्म है। इसका समुचित सम्मान करना चाहिए और इसकी बरबादी से बचना चाहिए। अनेक अवसरों पर समाजसेवियों ने देश की जनता से खाने की बरबादी रोकने की अपील की है। उन्होंने कहा कि यह गरीबों के साथ अन्याय है और इसकी अनदेखी समाजद्रोह है। हमने कभी सोचा है कि हम जो जूठन छोड़ देते हैं, उससे हम कितने गरीबों का पेट भर सकते हैं? उन्होंने कहा था कि यह ऐसा विषय नहीं है जिसे समझाना पड़े, परंतु तब भी दुर्भाग्य ही है कि इस विषय पर लिखना, बोलना पड़ता है।

इस विषय पर उदासीनता गरीबों के साथ एक तरह से अन्याय है। इस पर सामाजिक जागरूकता और बढ़नी चाहिए। भारत में अनाज को अन्नदेव का दरजा प्राप्त है और यही कारण है कि हमारे देश में भोजन जूठा छोड़ना या उसका अनादर करना पाप माना जाता है। दुर्भाग्यवश आधुनिकता के कारण हम अपने पुराने संस्कार भूल गए हैं। यही कारण है कि शादी-ब्याह जैसे आयोजनों में रोजाना सैकड़ों टन खाना बरबाद हो रहा है। हमारे देश में यह कैसी विडंबना है कि एक तरफ करोड़ों लोग खाने को मोहताज हैं, तो वहीं लाखों टन खाना प्रतिदिन बरबाद किया जा रहा है।

भारत में हर वर्ष जितना भोजन तैयार होता है, उसका एक-तिहाई बरबाद चला जाता है। बरबाद जाने वाला भोजन इतना होता है कि उससे करोड़ों लोगों की खाने की जरूरत पूरी हो सकती है। एक रिपोर्ट में खुलासा हुआ है कि भारत में बढ़ती संपन्नता के साथ ही लोग खाने के प्रति असंवेदनशील हो रहे हैं। खरच करने की क्षमता के साथ ही खाना फेंकने की प्रवृत्ति भी बढ़ रही है। आज भी देश में विवाहस्थलों के पास रखे कूड़ाघरों में 40 प्रतिशत से अधिक खाना फेंका हुआ मिलता है। अगर इस बरबादी को रोका जा सके तो कई लोगों का पेट भरा जा सकता है।

विश्व खाद्य संगठन के प्रतिवेदन के अनुसार देश में हर साल पचास हजार करोड़ रुपये का भोजन बरबाद चला जाता है, जो कि देश के उत्पादन का 40 फीसदी है। एक आकलन के मुताबिक बरबाद होने वाले भोजन की धनराशि से पाँच करोड़ बच्चों की जिंदगी सँवारी जा सकती है।

भूख से मौत की खबर—वह भी भारत जैसे देश में! यह सुनने में कितना अटपटा लगता है। उस भारत में; जहाँ अरबों रुपये के सरकारी अनुदान पर खाद्य सुरक्षा की कई योजनाएँ चल रही हैं; जहाँ मध्याह्न भोजन-योजना के तहत हर दिन 12 करोड़ बच्चों को दिन के भरपेट भोजन देने का दावा किया जाता है; जहाँ हर हाथ को काम व हर पेट को भोजन के नाम पर हर दिन सरकारी कोष से करोड़ों रुपये खरच होते हैं। भारत में हर साल 5 साल से कम उम्र के 10 लाख बच्चों के भूख या कुपोषण से मरने के आँकड़े संयुक्त राष्ट्र ने जारी किए हैं। देश के 51 % परिवारों की आय का जरिया महज अस्थायी मजदूरी है। 4 लाख से ज्यादा परिवार कूड़ा बीनकर, तो 6.68 लाख परिवार भीख माँगकर अपना गुजारा करते हैं।

गाँवों में रहने वाले 40% परिवारों की औसत मासिक आय दस हजार रुपये से भी कम है। हर दिन कई लाख लोगों के भूखे पेट सोने के गैरसरकारी आँकड़ों वाले भारत देश के ये आँकड़े भी विचारणीय हैं कि हमारे देश में हर साल उतना गेहूँ बरबाद होता है, जितनी ऑस्ट्रेलिया की कुल पैदावार है। नष्ट हुए गेहूँ की कीमत लगभग 50 हजार करोड़ रुपये होती है और इससे 30 करोड़ लोगों को साल भर भरपेट खाना दिया जा सकता है।

हमारे देश में 2.1 करोड़ टन अनाज केवल इसलिए बरबाद हो जाता है; क्योंकि उसे रखने के लिए हमारे पास पर्याप्त भंडारण की सुविधा नहीं है। औसतन हर भारतीय 1 साल में 6 से 11 किलो अन्न बरबाद करता है। साल में जितना सरकारी खरीद का धान व गेहूँ खुले में पड़े होने के कारण नष्ट हो जाते हैं; उससे ग्रामीण अँचलों में 5,000 माल भंडारण बनाए जा सकते हैं। बस, जरूरत है तो एक सशक्त प्रयास करने की।

हमारे यहाँ बचे हुए भोजन को फेंकना भले ही मामूली-सी बात प्रतीत हो या फिर किसी बड़े कार्यक्रम की अपरिहार्यता

बताकर इससे पल्ला झाड़ लिया जाए, लेकिन यह एक गंभीर समस्या है।

इस संदर्भ में विश्व खाद्य एवं कृषि संगठन द्वारा जारी रिपोर्ट में खाद्यान्नों के अपव्यय से जुड़ी चुनौतियों का बारीकी से विश्लेषण किया गया है। संगठन की रिपोर्ट में कहा गया है कि खाद्य अपव्यय को रोके बिना खाद्य सुरक्षा संभव नहीं है। इस रिपोर्ट में वैश्विक खाद्य-अपव्यय का अध्ययन पर्यावरणीय दृष्टिकोण से करते हुए बताया है कि भोजन के अपव्यय से जल, जमीन और जलवायु के साथ-साथ जैव-विविधता पर भी बेहद नकारात्मक असर पड़ता है। रिपोर्ट के मुताबिक अपव्यय किए जाने वाले इस भोजन की वजह से 3 अरब टन से भी ज्यादा मात्रा में खतरनाक ग्रीन हाउस गैसें उत्सर्जित होती हैं। रिपोर्ट बतलाती है कि हमारी लापरवाही और अनुचित गतिविधियों के कारण पैदा किए जाने वाले अनाज का एक-तिहाई हिस्सा बरबाद कर दिया जाता है।

हमारे यहाँ शादियों, उत्सवों या त्योहारों में होने वाली भोजन की बरबादी से हम सब वाकिफ हैं। इन अवसरों पर ढेर सारा खाना कचरे में चला जाता है। कई बार तो घरों के आस-पास फेंके गए भोजन से उठने वाली दुर्गंध एवं सड़ाँध वहाँ रहने वालों के लिए परेशानी खड़ी कर देती है। सड़ते भोजन को खाने से पशु-पक्षियों की होने वाली मौतों की खबरें भी हम अक्सर पढ़ते रहते हैं। शादियों में खाने की बरबादी को लेकर भारत सरकार भी चिंतित है। खाद्य मंत्रालय ने कहा है कि वह शादियों में मेहमानों की संख्या के साथ ही परोसे जाने वाले व्यंजनों की संख्या सीमित करने पर विचार कर रही है।

इस बारे में विवाह समारोह अधिनियम 2006 कानून भी बनाया गया है। हालाँकि इस कानून का कड़ाई से कहीं भी पालन नहीं किया जाता है। खाने की बरबादी रोकने की दिशा में देश की महिलाएँ बहुत कुछ कर सकती हैं। महिलाओं को अपने घर के बच्चों में बचपन से यह आदत डालनी होगी कि जितनी भूख हो, उतना ही खाना लो। एकदूसरे से बाँटकर खाना भी भोजन की बरबादी को बड़ी हद तक रोक सकता है। भोजन की बरबादी रोकने के लिए हमें अपनी आदतों को सुधारने की जरूरत है। धार्मिक एवं स्वयंसेवी संगठनों को भी इस दिशा में पहल करनी चाहिए।

आजकल कई शहरों में समाजसेवी लोगों ने मिलकर रोटी बैंक बनाया हुआ है। रोटी बैंक से जुड़े कार्यकर्त्ता शहर में लोगों के घरों से व विभिन्न समारोहस्थलों से बचे हुए भोजन को एकत्रित कर जरूरतमंद गरीबों तक पहुँचाते हैं। इससे जहाँ भोजन की बरबादी रुकती है तो वहीं जरूरतमंदों को भोजन भी उपलब्ध होता है। इस दिशा में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम का अभियान—सोचें, खाएँ और बचाएँ एक अच्छी पहल है, जिसमें शामिल होकर भी भोजन की बरबादी रोकी जा सकती है। वर्तमान समय में समाज के सभी लोगों को मिलकर भोजन की बरबादी रोकने के लिए सामाजिक चेतना लानी होगी, तभी भोजन की बरबादी रोकने का अभियान सफल हो पाएगा।

इस संदर्भ में दिल्ली सरकार ने भोजन की बरबादी रोकने के लिए एक अच्छी पहल की है, जिसकी सराहना की जानी चाहिए। सुप्रीम कोर्ट के निर्देश पर दिल्ली सरकार ने राजधानी क्षेत्र के सभी वैवाहिक स्थल, होटल, मोटल और फार्म हाउसों में होने वाले शादी-समारोहों में खाने की बरबादी रोकने को कमर कस ली है। दिल्ली में अब शादी-समारोहों के लिए आयोजकों को स्थानीय निकायों को सात दिन पहले बताना होगा कि कितने बराती शादी-समारोह में शामिल होंगे; कार्यक्रम कितने बजे से शुरू होगा, कितने बजे समाप्त होगा। समारोह में खाना बचता है तो जरूरतमंदों के लिए वे किस संस्था या एनजीओ के पास पहुँचाएँगे—इस बात की जानकारी भी उन्हें देनी होगी। साथ ही एनजीओ या संस्था का नाम, पता व टेलीफोन नंबर भी देना होगा। इस तरह के प्रयासों को आज एक जन-आंदोलन के रूप में लेकर कार्य करने की आवश्यकता है, ताकि इस विद्रूप सामाजिक समस्या पर समय रहते अंकुश लगाया जा सके। ❑

यह दुनिया किसी को उच्च स्थान और सम्मान देने से पूर्व यह परखना चाहती है कि वह आदर्श की रक्षा के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों का सामना करते हुए अपने खरेपन का प्रमाण किस सीमा तक दे सकता है ?

योग-साधना के सबल आधार—यम-नियम

योग, साधक को आध्यात्मिक लक्ष्य तक पहुँचाने का मार्ग है। पथ की भिन्नता के आधार पर योग के भी कई प्रकार हैं, जिनमें पातंजलयोग अर्थात राजयोग संभवत: सबसे अधिक वैज्ञानिक और सर्वसाधारण के लिए सहजता से अनुकरणीय एवं उपयोगी है एवं एक सुव्यवस्थित पद्धति है। जीवात्मा को अपने मूलस्वरूप में स्थित होने व ऋतंभरा प्रज्ञा या समाधि की अवस्था तक पहुँचाने के लिए इसमें अष्टांग योग का पथ प्रदर्शित है, जिसमें धारणा-ध्यान के माध्यम से इसके उच्चस्तरीय आयामों को अनावृत किया जाता है। यम-नियम इसके प्राथमिक सबल आधार हैं।

यम के अंतर्गत सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह आते हैं। ये क्रमश: साधक के जीवन में झूठ, हिंसा, क्रोध, इंद्रिय असंयम, व्यभिचार एवं लोभ—अनावश्यक संग्रह जैसी दुष्प्रवृत्तियों से बचने के सूत्र हैं, जो व्यक्तिगत जीवन को कलुषित किए रहते हैं एवं पारिवारिक, सामाजिक जीवन में भी दूषित वातावरण का कारण बनते हैं।

नियम के अंतर्गत शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान आते हैं, जो क्रमश: व्यक्तिगत जीवन में गंदगी, देहासक्ति, असंतोष, शिथिलता-जड़ता, आत्म-विस्मृति-मूढ़ता एवं ईश्वरविमुखता जैसे दोषों का निराकरण कर व्यक्ति को योगपथ के लिए तैयार करते हैं।

यम-नियमों का क्रमवार सारगर्भित वर्णन कुछ इस प्रकार से है—

सत्य—जीवन को सम्यक रूप से समझने का प्रयास-पुरुषार्थ है। यह देश, काल, परिस्थिति में निहित सत्य को समझते हुए इस पर आरूढ़ होने का नाम है। सत्य वचन इसका एक हिस्सा है, लेकिन सच ऐसा होना चाहिए जो व्यापक रूप में हितकारी हो, व्यक्तिगत राग-द्वेष एवं दुर्भावना आदि से प्रेरित न हो। यह एक सत्यपरायण जीवन जीने का नाम है।

अहिंसा—तन-मन से किसी को कष्ट एवं पीड़ा न देना है। साथ ही यह अपने क्रोध पर नियंत्रण रखते हुए एक सभ्य, सुसंस्कृत एवं शालीन जीवन जीने का नाम है; क्योंकि क्रोध का आवेग प्रकारांतर में व्यक्ति की विक्षुब्धता एवं अशांति का ही कारण बनता है और आपसी संबंधों के तार भी उलझा देता है। योग के लिए आवश्यक मनोभूमि का इससे क्षरण भी होता है।

अस्तेय—का अर्थ चोरी न करना है। किसी भी रूप में चौर्यकर्म हमेशा व्यक्ति को अपनी नजरों से गिराता है तथा आत्मसम्मान के भाव को न्यून करता है। अस्तेय, व्यक्ति के मेहनत एवं ईमानदारी भरे जीवन का नाम है, जो व्यक्तित्व में गौरवभाव को जगाता है तथा आत्मविश्वास को बढ़ाता है व साथ ही मन की शांति-स्थिरता को सुनिश्चित करता है। अस्तेय सज्ञेय में अपना वास्तविक हक रखने का नाम है।

ब्रह्मचर्य—का अभिप्राय इंद्रियसंयम एवं सदाचारपूर्ण जीवन से है। इंद्रिय असंयम व्यक्ति की ऊर्जा का क्षय करता है और व्यक्ति को तन-मन से रुग्ण बनाते हुए उसकी आध्यात्मिक संभावनाओं पर तुषारापात करता है। वहीं व्यभिचार पारिवारिक-सामाजिक जीवन में कलह-क्लेश एवं पतन के बीज बोकर तमाम तरह की विसंगतियों को जन्म देता है। ब्रह्मचर्य का अनुशासन इस संकट से उबारता है और अध्यात्म पथ की पात्रता देता है।

अपरिग्रह—धन एवं वस्तुओं के अनावश्यक संग्रह का अभाव है। लोभवश व्यक्ति तमाम तरह की चीजों को बटोरता रहता है। क्रमश: इनका बोझा बढ़ता जाता है और जीवन भारभूत हो जाता है। धन एवं वस्तुओं का ही नहीं, विचारों एवं सूचनाओं का अनावश्यक संग्रह भी जीवन में घोर अशांति का कारण बनता है। अपरिग्रह इस विद्रूपता से बचाता है और सादगी-सरलता भरे जीवन का मार्ग प्रशस्त कर साधक को योगपथ पर आरूढ़ करता है।

शौच—तन एवं मन की शुद्धि का नाम है। जब तक दोनों में मैल जमा रहता है, अध्यात्म पथ की पात्रता विकसित नहीं हो पाती। सफाई के साथ देह की आंतरिक-बाह्य मैल की शुद्धि से स्वस्थ एवं निरोगी जीवन की नींव पड़ती है, साथ ही देह के प्रति अनासक्ति का भाव भी विकसित होता

है, जो साधक की चेतना को अंतर्मुखी बनाता है। शौच का अनुसरण मन के मैल को भी शुद्ध करता है।

संतोष—व्यक्ति के अपने पुरुषार्थ के आधार पर प्राप्त या प्रारब्धवश ईश्वरप्रदत्त परिस्थितियों या साधनों के साथ प्रसन्न रहने का नाम है अन्यथा व्यक्ति की तृष्णा का कोई अंत नहीं, जो उसे हमेशा अशांति की आग में सुलगाए रखती है। संतोष का अर्थ आलसी-प्रमादी जीवन जीना भी नहीं है। यह अपने पुरुषार्थ के चरम के बाद धारण किया गया आत्मसंतुष्टि एवं प्रसन्नता का भाव है।

तप—का अर्थ अपने इष्ट के निमित्त सहर्ष कष्ट-सहिष्णुता का नाम है। तप से उष्णता पैदा होती है, तन-मन के पाप-ताप गलते हैं, चित्त में जड़ जमाई दुष्प्रवृत्तियों का शोधन होता है। अपने कर्त्तव्य कर्मों का हर स्थिति में पालन भी तप के अंतर्गत आता है। तप व्यक्ति की चेतना को शुद्ध करता है और इसकी प्रसुप्त पड़ी शक्तियों का जागरण भी करता है।

स्वाध्याय—सद्ग्रंथों के प्रकाश में स्वयं का अध्ययन करना है। स्वाध्याय के साथ जीवनलक्ष्य स्पष्ट होता है, इसके मार्ग के अवरोधों एवं सहायक तत्त्वों का बोध होता है और आध्यात्मिक लक्ष्य की ओर बढ़ने का मार्गदर्शन मिलता है। नित्य किया गया स्वाध्याय का अभ्यास व्यक्तित्व को सतत आत्मसमीक्षा की भावभूमि में स्थिर करता है और योगपथ का अगला चरण स्वत: अनुसरित होता है।

ईश्वर प्रणिधान—ईश्वर के प्रति श्रद्धा, भक्ति एवं समर्पण की भावना है। स्वाध्याय-सत्संग इष्ट के प्रति श्रद्धा, आस्था एवं अनुराग पैदा करते हैं। साधक अहर्निश इष्ट-आराध्य का सुमिरन करता है, अपने विचार एवं कर्मों को निवेदित व अर्पित करता है। पातंजल योगसूत्र के अनुसार अपनी परिपक्व अवस्था में ईश्वर प्रणिधान साधक को समाधि की अवस्था तक पहुँचाने में सक्षम होता है। सतत ईश्वर प्रणिधान साधक की सुमिरन, समर्पण एवं प्रार्थनामयी अवस्था का नाम है।

इस तरह यम-नियम वह ठोस नींव हैं, जिस पर राजयोग का महाप्रासाद खड़ा होता है। नींव जितनी सबल होगी, भवन उतना ही मजबूत होगा। यम-नियम को साधे बिना धारणा-ध्यान के प्रयोग समय की बरबादी वाले भावहीन कर्मकांडमात्र बनकर रह जाते हैं तथा यम-नियम के सधते ही ध्यान-धारणा जीवन के अंग बनने लगते हैं और साधक आध्यात्मिक विकास के पथ पर आगे बढ़ पाता है। ❑

एक गुरु के दो शिष्य थे। दोनों बड़े ईश्वरभक्त थे। ईश्वर-उपासना के बाद वे आश्रम में आए रोगियों की चिकित्सा में गुरु की सहायता किया करते थे।

एक दिन उपासना के समय ही कोई कष्टपीड़ित रोगी आ पहुँचा। गुरु ने पूजा कर रहे शिष्यों को बुला भेजा। शिष्यों ने कहला भेजा—"अभी थोड़ी पूजा बाकी है, पूजा समाप्त होते ही आ जाएँगे।"

गुरुजी ने दोबारा फिर आदमी भेजे। इस बार शिष्य आ गए, पर उन्होंने अकस्मात् बुलाए जाने पर अधैर्य व्यक्त किया। गुरु ने कहा—"मैंने तुम्हें इस व्यक्ति की सेवा के लिए बुलाया था, प्रार्थनाएँ तो देवता भी कर सकते हैं, किंतु अकिंचनों की सहायता तो मनुष्य ही कर सकते हैं। सेवा—प्रार्थना से अधिक ऊँची है; क्योंकि देवता सेवा नहीं कर सकते।"

शिष्य अपने कृत्य पर बड़े लज्जित हुए और उस दिन से प्रार्थना की अपेक्षा सेवा को अधिक महत्त्व देने लगे।

क्रोध की चिनगारी से बचें

एक बार गौतम बुद्ध अपने शिष्यों के साथ भ्रमण कर रहे थे। वे चलते-चलते एक गाँव के पास स्थित एक बगीचे में पहुँचे। बुद्ध के आने की खबर आस-पास के गाँवों में भी पहुँच गई और देखते-ही-देखते उनके दर्शन को हजारों लोग एकत्रित हो गए। वे सभी बुद्ध का दर्शन पाकर बेहद प्रसन्न हुए और वे सभी बुद्ध की अमृतवाणी सुनने की आस में वहीं उनके निकट बैठ गए।

बुद्ध अपने शिष्यों के साथ मौन बैठे थे। शिष्यों के साथ वहाँ बैठे सभी लोग बुद्ध से कुछ सुनने की आस लगाए बैठे थे, परंतु बुद्ध तो अपने आप में ही खोये अभी भी मौन बैठे थे। शिष्यों को लगा कि तथागत कहीं अस्वस्थ तो नहीं हैं? आखिर एक शिष्य ने उनसे पूछ ही लिया—"तथागत! आज आप शांत क्यों बैठे हैं? आपको सुनने की प्रतीक्षा में यहाँ दूर-दूर से आए हजारों लोग बैठे हैं। फिर आप मौन क्यों हैं? क्या हममें से किसी शिष्य से ऐसी गलती हो गई है, जिससे कि आप नाराज हैं?"

तभी किसी अन्य शिष्य ने पूछा—"भगवन्! कहीं आप अस्वस्थ तो नहीं हैं?" परंतु बुद्ध अभी भी मौन थे। सच तो यह था कि हर पल आनंद में स्थित रहने वाले बुद्ध न तो नाराज थे और न ही अस्वस्थ। वे तो सभा में बैठे हुए हजारों लोगों के चित्त के चित्र को अपने ध्यानस्थ नेत्रों से पलभर में ही देख रहे थे कि सभा में बैठे प्रत्येक व्यक्ति के मन में क्या चल रहा है? उसके चित्त की दशा क्या है? इसलिए वे अपने तरीके से ही लोगों के चित्त की शल्यक्रिया किया करते थे। वे अपने तरीके से लोगों की मानसिक उलझनों को दूर करने का प्रयास करते थे। वे लोगों की समस्याओं का बड़े ही व्यावहारिक रूप में समाधान देने का प्रयास करते थे।

उस समय वे मौन में ही सभा में बैठे किसी व्यक्ति के मन से उठ रही क्रोध की अदृश्य चिनगारी को देख रहे थे। वे अभी भी शांत ही बैठे थे कि तभी सभा से कुछ दूरी पर खड़ा एक व्यक्ति जोर से चिल्लाया—"आज मुझे सभा में बैठने की अनुमति क्यों नहीं दी गई है? मुझे प्रवेश की अनुमति क्यों नहीं मिली?" इसी बीच एक शिष्य ने उसका पक्ष लेते हुए कहा कि उस व्यक्ति को सभा में आने की अनुमति प्रदान की जाए।

बुद्ध मौन से बाहर आए और बोले—"नहीं! उसे सभा में आने की आज्ञा नहीं दी जा सकती है।" यह सुन शिष्यों के साथ वहाँ बैठे सभी लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। करुणा और प्रेम की प्रतिमूर्ति महात्मा बुद्ध के द्वारा किसी को अनुमति न दिया जाना वास्तव में सबके लिए आश्चर्यजनक था। बुद्ध की दृष्टि में तो मानव-मानव में कोई भेद नहीं था। बुद्ध की यह प्रतिक्रिया निश्चित ही सबको विस्मय और आश्चर्य में डालने वाली थी।

बुद्ध अपने शिष्यों के साथ वहाँ बैठे सभी लोगों के मनोभावों को बखूबी समझ रहे थे। इसलिए बुद्ध ने कहा—"इस व्यक्ति के अंदर अदृश्य रूप में क्रोध की ज्वाला तो पहले से ही धधक रही थी, जो अब बाहर प्रकट हो रही है। जैसे—अग्नि अपने संपर्क में आने वाली हर चीज को भस्मीभूत कर देती है, वैसे ही क्रोध भी एक प्रकार से अग्नि के समान है, जो क्रोधी व्यक्ति के भीतर से निकलकर आस-पास के लोगों में भी क्रोध की चिनगारी सुलगा देती है। इसलिए क्रोधी व्यक्ति को छूने से कोई भी जल सकता है और अपनी हानि कर सकता है।"

बुद्ध आगे बोले—"क्रोध पलभर में ही व्यक्ति की सारी अच्छाई को नष्ट कर सकता है और उससे कुछ भी अनिष्ट करवा सकता है। क्रोध की अग्नि पलभर में ही व्यक्ति के भीतर की करुणा और प्रेम जैसी उच्चतर भावनाओं को सोख लेती है। क्रोध, हिंसा का ही प्रकट रूप है। जिस व्यक्ति में क्रोध की अग्नि जल रही है, वह व्यक्ति अहिंसक हो ही नहीं सकता। भला जो स्वयं को अपने क्रोध की चिनगारी से पल-पल जला रहा हो, वह दूसरों के साथ अहिंसक कैसे हो सकता है। इसलिए ऐसे व्यक्ति को सभा से, समूह से, समाज से दूर ही रहना चाहिए।"

सभा में बैठने की अनुमति न देने के कारण क्रोध में जल रहे उस व्यक्ति को अब अपनी गलती का एहसास हो चुका था। वह दौड़ता हुआ आया व बुद्ध के चरणों में माथा टेककर बिलखने लगा। प्रेम और करुणा की प्रतिमूर्ति बुद्ध ने उसके सिर पर प्रेम से हाथ फेरा और बोले—''वत्स! क्रोध दहकते हुए उस कोयले के समान है, जिसे व्यक्ति दूसरों को जलाने के लिए अपने पास रखे रहता है; अपने मन में रखे रहता है और उससे हर पल वह स्वयं ही जलता रहता है, इसलिए क्रोध से बाहर निकलो। तुम अपने अंदर प्रेम, करुणा और सहिष्णुता के जल को भरकर अपने भीतर जल रही क्रोध की अग्नि को, चिनगारी को सदा-सदा के लिए बुझा सकते हो। क्रोध के शांत होते ही, समाप्त होते ही तुम शांति को प्राप्त होगे और तुम्हें तुम्हारे अंदर से ही सुख की प्राप्ति होने लगेगी।''

बुद्ध के उपदेश को सुनकर वह व्यक्ति क्रोध पर विजय प्राप्त करने के संकल्प के साथ वहाँ से चल पड़ा और प्रेम, करुणा की ध्यान-साधना करते-करते एक दिन सचमुच ही क्रोध पर नियंत्रण प्राप्त करने में सफल हो गया। ❑

श्रावस्ती का मृगारि श्रेष्ठि करोड़ों मुद्राओं का स्वामी था। वह मन में मुद्राएँ ही गिनता रहता था। उसे मात्र धन से ही मोह था। मुद्राएँ ही उसका जीवन थीं। उनमें ही उसके प्राण बसते थे। सोते-जागते मुद्राओं का सम्मोहन ही उसे लुभाए रहता था। संसार में और भी कोई सुख है यह उसने कभी अनुभव ही नहीं किया था।

एक दिन वह भोजन के लिए बैठा। पुत्रवधू ने प्रश्न किया—''तात! भोजन तो ठीक है न? कोई त्रुटि तो नहीं रही?'' मृगारि कहने लगा—''आयुष्मती! आज यह कैसा प्रश्न पूछ रही हो? तुम जैसी सुयोग्य पुत्रवधू भी कहीं त्रुटि कर सकती है, तुमने तो मुझे सदैव ताजे और स्वादिष्ट व्यंजनों से तृप्त किया है।''

विशाखा ने निःश्वास छोड़ी, दृष्टि नीचे करके कहा—''आर्य! यही तो आपका भ्रम है। मैं आज तक सदैव आपको बासी भोजन खिलाती रही हूँ। मेरी बड़ी इच्छा होती है कि आपको ताजा भोजन कराऊँ, पर एषणाओं के सम्मोहन ने आप पर पूर्णाधिकार कर लिया है। खिलाऊँ भी तो आपको उसका सुख न मिलेगा। आपका जीवन बासा हो गया है, फिर मैं क्या करूँ ?''

मृगारि को सारे जीवन की भूल पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। अब उसने भक्ति-भावना स्वीकार की और धन का सम्मोहन त्यागकर धर्मकर्म में रुचि लेने लगा।

भौतिकता का आकर्षण प्रायः मनुष्य की सदिच्छाओं और भावनाओं को समाप्त कर देता है। उस अवस्था में तुच्छ स्वार्थ के सिवाय जीवन की उत्कृष्टताओं से मनुष्य वंचित रह जाता है।

पर्व विशेष (आश्विन नवरात्र पर)

आदिशक्ति के नौ रूप

भारतीय जनजीवन में धर्म की महत्ता अपरंपार है। यह भारत की उदात्त संस्कृति का ही परिणाम है कि सब धर्मों को मानने वाले लोग अपने-अपने धर्म को मानते हुए इस देश में भाईचारे की भावना के साथ सदियों से एक साथ रहते चले आ रहे हैं। यही कारण है कि पूरे विश्व में भारत के धर्म व संस्कृति सर्वोत्तम माने गए हैं। विभिन्न धर्मों के साथ जुड़े कई पर्व भी हैं, जिन्हें भारत के कोने-कोने में श्रद्धा, भक्ति और धूम-धाम से मनाया जाता है, उन्हीं में से एक है—नवरात्र।

नवरात्र पर्व के नौ दिनों के दौरान आदिशक्ति जगदंबा के नौ विभिन्न रूपों की आराधना की जाती है। ये नौ दिन वर्ष के सर्वाधिक पवित्र दिवस माने गए हैं। इन नौ दिनों का भारतीय धर्म एवं दर्शन में ऐतिहासिक महत्त्व है और इन्हीं दिनों में बहुत-सी दिव्य घटनाओं के घटने की जानकारी हिंदू पौराणिक ग्रंथों में मिलती है। माता के इन नौ रूपों को नवदुर्गा के नाम से भी जाना जाता है, जो इस प्रकार हैं— शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चंद्रघंटा, कूष्मांडा, स्कंदमाता, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी और सिद्धिदात्री। नवरात्र से हमें अधर्म पर धर्म और बुराई पर अच्छाई की जीत की सीख मिलती है। यह हमें बताती है कि इनसान अपने अंदर के मूलभूत श्रेष्ठ गुणों एवं मूल्य से नकारात्मकता पर विजय प्राप्त करे और स्वयं के अलौकिक स्वरूप से साक्षात्कार करे।

नवरात्र एक संस्कृत शब्द है, जिसका अर्थ होता है— नौ रातें। इन नौ रातों और दस दिनों के दौरान, शक्ति के नौ रूपों की पूजा की जाती है। दसवाँ दिन दशहरा के नाम से प्रसिद्ध है। नवरात्र एक हिंदू पर्व है। नवरात्र वर्ष में चार बार आते हैं। चैत्र, आषाढ़, आश्विन, पौष माह में प्रतिपदा से नवमी तक नवरात्र पर्व मनाया जाता है। नवरात्र की नौ रातों में तीन देवियों—महालक्ष्मी, सरस्वती और दुर्गा के नौ स्वरूपों की पूजा होती है, जिन्हें नवदुर्गा कहते हैं।

दुर्गा का मतलब जीवन के दु:ख को हटाने वाली होता है। नवरात्र एक महत्त्वपूर्ण व प्रमुख त्योहार है, जिसे पूरे भारत में काफी उत्साह के साथ मनाया जाता है। वसंत की शुरुआत और शरद ऋतु की शुरुआत, जलवायु और सूरज के प्रभावों का महत्त्वपूर्ण संगम मानी जाती है।

ये दो समय माँ दुर्गा की पूजा के लिए पवित्र अवसर माने जाते हैं। इस त्योहार की तिथियाँ चंद्र कैलेंडर के अनुसार निर्धारित होती हैं। यह पूजा वैदिक युग से पहले, प्रागैतिहासिक काल से है। नवरात्र के पहले तीन दिन देवी दुर्गा की पूजा करने के लिए समर्पित किए गए हैं। यह पूजा उनकी ऊर्जा और शक्ति की की जाती है। प्रत्येक दिन दुर्गा के एक अलग रूप को समर्पित है। त्योहार के पहले दिन बालिकाओं की पूजा की जाती है। दूसरे दिन युवती की पूजा की जाती है। तीसरे दिन जो महिला परिपक्वता के चरण में पहुँच गई है, उसकी पूजा की जाती है।

नवरात्र के चौथे, पाँचवें और छठे दिन लक्ष्मी-समृद्धि और शांति की देवी की पूजा करने के लिए समर्पित हैं। आठवें दिन पर एक यज्ञ किया जाता है। नौवाँ दिन नवरात्र समारोह का अंतिम दिन है। यह महानवमी के नाम से भी जाना जाता है। इस दिन नौ कुँवारी कन्याओं की पूजा होती है। इन नौ लड़कियों को देवी दुर्गा के नौ रूपों का प्रतीक माना जाता है। लड़कियों का सम्मान तथा स्वागत करने के लिए उनके पैर धोए जाते हैं। पूजा के अंत में लड़कियों को उपहार के रूप में नए कपड़े, वस्तुएँ, फल प्रदान किए जाते हैं।

शक्ति की उपासना का पर्व शारदीय नवरात्र प्रतिपदा से नवमी तक निश्चित नौ तिथि, नौ नक्षत्र, नौ शक्तियों की नवधा भक्ति के साथ सनातनकाल से मनाया जा रहा है। आदिशक्ति के हर रूप की नवरात्र के नौ दिनों में क्रमश: अलग-अलग पूजा की जाती है। माँ दुर्गा की नौवीं शक्ति का नाम सिद्धिदात्री है। ये सभी प्रकार की सिद्धियाँ देने वाली हैं। इनका वाहन सिंह है और ये कमल पुष्प पर ही आसीन होती हैं। नवरात्र के नौवें दिन इनकी उपासना की जाती है।

इस पर्व से जुड़ी एक कथा के अनुसार देवी दुर्गा ने एक भैंसा रूपी असुर अर्थात महिषासुर का वध किया था। पौराणिक कथाओं के अनुसार महिषासुर के एकाग्र ध्यान से

बाध्य होकर देवताओं ने उसे अजेय होने का वरदान दे दिया।

उसको वरदान देने के बाद देवताओं को चिंता हुई कि वह अब अपनी शक्ति का गलत प्रयोग करेगा। महिषासुर ने अपने साम्राज्य का विस्तार स्वर्ग के द्वार तक कर दिया और उसके इस कृत्य को देखकर देवता चिंतित हो गए।

महिषासुर ने सूर्य, इंद्र, अग्नि, वायु, चंद्रमा, यम, वरुण और अन्य देवताओं के सभी अधिकार छीन लिए और स्वयं स्वर्गलोक का अधिकारी बन बैठा। देवताओं को महिषासुर के प्रकोप से बचने के कारण पृथ्वी पर विचरण करना पड़ रहा था तब महिषासुर के इस दुस्साहस से क्रोधित होकर देवताओं ने अपने सम्मिलित प्रयासों से देवी दुर्गा की रचना की। ऐसा माना जाता है कि देवी दुर्गा के निर्माण में सारे देवताओं का एक समान बल लगाया गया था।

महिषासुर का नाश करने के लिए सभी देवताओं ने अपने-अपने अस्त्र देवी दुर्गा को दिए थे और कहा जाता है कि इन देवताओं के सम्मिलित प्रयास से ही देवी दुर्गा शक्तिशाली हो गई थीं। इन नौ दिनों में देवी-महिषासुर संग्राम हुआ और अंततः महिषासुर वध करके देवी महिषासुरमर्दिनी कहलाईं।

नवदुर्गा और दस महाविद्याओं में काली ही प्रथम और प्रमुख हैं। भगवान शिव की शक्तियों में उग्र और सौम्य, दो रूपों में अनेक रूप धारण करने वाली दशमहाविद्या अनंत सिद्धियाँ प्रदान करने में समर्थ हैं। दसवें स्थान पर कमला वैष्णी शक्ति हैं, जो प्राकृतिक संपत्तियों की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी हैं। देवता, मानव, दानव सभी इनकी कृपा के बिना अधूरे एवं असहाय हैं, इसलिए आगम-निगम दोनों में इनकी उपासना समान रूप से वर्णित है। सभी देवता, राक्षस, मनुष्य, गंधर्व इनकी कृपा-प्रसाद के लिए लालायित रहते हैं। इस प्रकार नवरात्र के नौ दिनों में भगवती के नौ रूपों की आराधना की जाती है। इससे जीवन में सुख, समृद्धि एवं शांति बनी रहती है। ❑

महात्मा ईसा अपनी दयालुता के कारण सदा दुःखी और पापी कहे जाने वाले अपराधियों से हर समय घिरे रहते थे। यहाँ तक कि जब वे भोजन किया करते थे, तब भी बहुत से पतित लोग उन्हें घेरे रहते थे।

एक बार वे बहुत से नीच जाति के लोगों और पापी-पतितों के साथ बैठे भोजन कर रहे थे। यह देखकर एक विरोधी ने उनके शिष्य से कहा—"तेरा गुरु, जिसे तुम लोग भगवान का बेटा और पवित्र आत्मा बतलाते हो, इस प्रकार नीचों और पतितों से प्रेम करता है, उनके साथ बैठा भोजन पा रहा है, फिर भला तुम लोग किस प्रकार आशा कर सकते हो कि हम लोग उसका आदर करें और उसकी बात मानें।"

महात्मा ईसा ने विरोधी की बात सुन ली और विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया—"भाई वैद्य की आवश्यकता रोगियों को होती है, निरोगियों को नहीं। धर्म की आवश्यकता पापियों को होती है, उनको नहीं, जो पहले से ही अपने को धार्मिक समझते हैं। मैं धर्मात्माओं का नहीं, पापियों का हित करना चाहता हूँ। उन्हें मेरी बहुत जरूरत है।"

सोच-समझकर खाएँ

भोजन का संबंध स्वाद के साथ-साथ सेहत से भी जुड़ा है। स्वाद का आनंद हम तभी तक अनुभव कर सकते हैं, जब तक हमारी अच्छी सेहत है; क्योंकि सेहत बिगड़ते ही मुँह का स्वाद भी बिगड़ जाता है, फिर हमारी जीभ हमें वह स्वाद अनुभव नहीं करा पाती, जो अच्छी सेहत के समय अनुभव करा पाती थी। इसके साथ ही सेहत बिगड़ने पर स्वादिष्ट भोजन लेने से या तो परहेज करने के लिए कह दिया जाता है या फिर उस खाने में उतना आनंद नहीं आता।

सेहत बिगड़ने पर सादा भोजन करने की सलाह तब तक के लिए दी जाती है, जब तक कि सेहत ठीक न हो जाए और इस अवधि में तरह-तरह के परहेज करने के लिए भी कहा जाता है। यदि इन बातों की अवहेलना कर दी जाए, तो फिर सेहत को सुधारना मुश्किल होता है—यह एक अनुभवजनित सत्य है। इसलिए लोग मन मसोसकर सेहत बिगड़ने पर सादा भोजन करते हैं, ताकि सेहत और न बिगड़े और जल्दी सुधर जाए।

सेहत को सुधारने के लिए सादा भोजन करने की सलाह दी जाती है; क्योंकि सादा भोजन करने से पेट इसे आसानी से पचा लेता है और फिर धीरे-धीरे हमारी जीभ की स्वादग्रंथियाँ व रसग्रंथियाँ भी सतेज हो जाती हैं। विशेषज्ञों के अनुसार—हमारी स्वादेंद्रियों को यदि अस्वाद भोजन कराया जाए, तो धीरे-धीरे वे अस्वाद में भी स्वाद महसूस करने लगती हैं; क्योंकि इससे उनकी स्वाद ग्रहण करने की क्षमता बढ़ती है।

यदि हमारी स्वादेंद्रियों को लगातार स्वादिष्ट व चटपटा भोजन कराया जाए, तो धीरे-धीरे उन्हें स्वादिष्ट भोजन में भी कम स्वाद आने लगता है और स्वाद अधिक ग्रहण के लिए ज्यादा मसालेदार व चटपटा भोजन करने की माँग होती है; क्योंकि ऐसा करने से स्वादेंद्रियों की स्वाद ग्रहण करने की स्वाभाविक क्षमता में कमी आती है। स्वादेंद्रियाँ तब सामान्य भोजन में रस अनुभव नहीं कर पातीं और स्वादिष्ट व्यंजन में भी कम रस अनुभव करती हैं। लगातार स्वादिष्ट व्यंजनों का स्वाद ग्रहण करने से मुँह का स्वाद विकृत हो जाता है, ऐसे में अधिक तेल, मिर्च, मसालों से युक्त भोजन ग्रहण करना अच्छा लगता है; जबकि ऐसा भोजन अधिक करने से पेट की पाचन क्षमता पर भी असर पड़ता है और तरह-तरह के रोगों को शरीर में आने के लिए आमंत्रण मिलता है।

जिस तरह जो लोग अधिक इत्र इत्यादि का प्रयोग करते हैं, उनकी नासिका तेज गंध ग्रहण करने की आदी हो जाती है, फिर सामान्य खुशबू उन्हें महसूस नहीं होती। यही बात स्वाद के साथ भी है। जो सामान्य भोजन करते हैं, उन्हें उसमें स्वाद अनुभव होता है, लेकिन जो स्वाद के लिए चटपटा भोजन करने के आदी होते हैं, वे सामान्य भोजन में भी स्वाद अनुभव नहीं कर पाते। बीमार पड़ने पर जब उन्हें सामान्य भोजन कराया जाता है, तो उनके मुँह का स्वाद फिर से ठीक हो जाता है और उनकी स्वादेंद्रियों की स्वाद ग्रहण करने की क्षमता सुधर जाती है।

भारत में तो हर क्षेत्र विशेष में भाँति-भाँति के व्यंजनों की भरमार है। भारत के पूर्व में, पश्चिम में, उत्तर में व दक्षिण में भोजन का स्वाद अलग-अलग है, भोजन ग्रहण करने की पद्धतियाँ अलग-अलग हैं और यही कारण है कि जब अलग-अलग क्षेत्रों के सभी व्यंजनों को एक जगह बनाया जाता है, तो मन उन्हें ग्रहण करने के लिए आतुर होता है। उन्हें देखने मात्र से मुँह में पानी आ जाता है।

भोजन कितना स्वादिष्ट है, यह आज केवल चखने का विषय ही नहीं रह गया है, बल्कि देखने का विषय भी हो गया है। भोजन देखने में कितना सुंदर है, किस भाँति वह परोसा जाता है, यह भी आजकल खान-पान में एक महत्त्वपूर्ण विषय हो गया है। यदि स्वादिष्ट व्यंजन भी बेतरतीब ढंग से परोसा जाए, तो देखने से उसे ग्रहण करने की इच्छा नहीं होती; जबकि यदि सामान्य भोजन भी थाली में विशेष ढंग से सजाकर परोसा जाए, तो उसे देखने और एक बार ग्रहण करने की इच्छा होती है। यही कारण है कि आजकल भोजन से संबंधित जो भी प्रतियोगिताएँ होती हैं, उनमें स्वाद, सेहत और प्रदर्शन—इन तीनों चीजों का ध्यान रखा जाता है।

वास्तव में खान-पान में ये तीनों चीजें जरूरी हैं, लेकिन क्रम से देखा जाए तो स्वाद सबसे पहले आता है; क्योंकि भोजन का संबंध सबसे पहले स्वाद से है। अस्वाद भोजन तो फिर भी खाया जा सकता है, लेकिन विकृत स्वाद से युक्त भोजन खाया नहीं जाता। भोजन के स्वाद में दो चीजें आती हैं—पहले तो भोजन की खुशबू और फिर उसका स्वाद। भोजन की खुशबू ही बता देती है कि उसमें स्वाद कितना है और फिर उसे चखकर अधिक अच्छे से पता चलता है कि भोजन कैसा बना है। इस तरह भोजन की महक दूर-दूर तक फैलकर अपना प्रचार करती है और उसे ग्रहण करने के लिए लोगों को आमंत्रित भी करती है।

खान-पान में स्वाद व खुशबू के साथ-साथ सेहत भी जरूरी है; क्योंकि ऐसा स्वादिष्ट भोजन जो हमारी सेहत बिगाड़े, उसे ग्रहण करना हमारे लिए अच्छा नहीं होता। ऐसा भोजन जो हमारी सेहत सुधारे, हमारे लिए उत्तम होता है। यही कारण है कि सेहत सुधारने के लिए हम कड़ुई गोलियाँ भी प्रसन्न मन से खा लेते हैं और कड़ुए स्वादवाली दवाइयाँ भी पीने से परहेज नहीं करते।

भोजन का स्वाद, उसकी खुशबू और उससे जुड़ी सेहत के साथ-साथ भोजन की सूरत भी उसकी खूबसूरती में चार चाँद लगाती है और देखने वालों को अपनी ओर आकर्षित करती है। यही कारण है कि होटलों में भाँति-भाँति से व्यंजनों को सजाकर रखा जाता है, सुंदर ढंग से परोसकर दिया जाता है; क्योंकि व्यंजनों को सुंदर ढंग से परोसना भी एक कला है।

खान-पान में खाने के साथ-साथ पीने की कला भी जुड़ी है। जल तो हम पीते ही हैं, इसके साथ ही फलों के रस, शर्बत, दूध, लस्सी आदि भी पिए जाते हैं। आजकल बाजार में पेय पदार्थों के कई तरह के विकल्प उपलब्ध हैं। फलों के जूस, शर्बत, दूध, लस्सी के उत्पाद आदि स्वास्थ्य के लिए हितकारी हैं, इसलिए पेय पदार्थों में इनका सेवन करना चाहिए, ये पेय पदार्थ न केवल स्वादिष्ट होते हैं, बल्कि पोषक तत्त्वों से भरपूर होने के कारण ये हमारी सेहत भी सुधारते हैं। इन्हें धीरे-धीरे आराम से पीना चाहिए, ताकि उनमें भी मुँह की लार समाविष्ट हो सके और ये पेय पदार्थ हमारे लिए अधिक फायदेमंद हो सकें।

खान-पान का एक नियम है—खाने को पीना चाहिए और पीने को खाना चाहिए, इसका तात्पर्य यह है कि ग्रहण किए जाने वाले भोजन को इतना चबाना चाहिए कि वह तरल पदार्थ में तब्दील हो जाए और पीने को अर्थात पेय पदार्थों को खाने से तात्पर्य यह है कि उन्हें इतना धीरे-धीरे पीना चाहिए कि उनमें मुँह की लार का अच्छे से समावेश हो सके।

सामान्य तौर पर होता यह है कि लोग जल्दबाजी में खाना खाते हैं और पानी भी शीघ्रता से पी लेते हैं। इससे होता यह है कि हमारे ग्रहण किए जाने वाले भोजन व पानी में लार का उचित समावेश नहीं हो पाता और इस कारण ग्रहण किया गया भोजन अच्छे से पचता नहीं है और यदि पच भी जाता है, तो उससे हमारे शरीर को कोई विशेष लाभ नहीं होता। ग्रहण किए जाने वाले भोजन में लार का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान होता है।

यदि भोजन अच्छे से चबाकर किया जाता है तो उसमें लार का उचित समावेश होता है। भोजन में मुँह की लार मिलने से उसमें जो रासायनिक क्रिया होती है, उससे भोजन का स्वरूप ही बदल जाता है और फिर वह भोजन जब पचता है, तो औषधि के समान हमारे शरीर को स्वस्थ व पुष्ट बनाता है।

जब कोई व्यक्ति अच्छे से चबाकर भोजन ग्रहण करता है, तो चबाने की प्रक्रिया से उसके मस्तिष्क की नस-नाड़ियाँ सक्रिय हो जाती हैं, बारंबार चबाने की क्रिया से उसे भोजन ग्रहण करने की संतुष्टि मिलती है और इससे भोजन का पाचन भी अच्छा होता है। इसलिए अधिक भोजन ग्रहण करना जरूरी नहीं है; क्योंकि अधिक भोजन ग्रहण करने से शरीर को उसे पचाने में अधिक मेहनत लगेगी और ऊर्जा अधिक खरच होगी तथा फायदा कम होगा।

इसके विपरीत यदि उचित मात्रा में भोजन ग्रहण किया जाए और उसे अच्छे से चबाकर ग्रहण किया जाए, तो ऐसा भोजन आसानी से पचता है और शरीर को उसे पचाने में कम मेहनत लगती है और पचने के उपरांत ऐसे भोजन से हमें अधिक पोषक तत्त्व मिलते हैं, जो हमारे शरीर को स्वस्थ व निरोगी रखने में सहायक होते हैं।

इस तरह हमारा खान-पान ऐसा हो, जो हमारी सेहत को सुधारे और हमारी स्वादेंद्रियों की क्षमता को बरकरार रखे। ❑

दूसरों की बुराई न करें

कुछ लोगों में दूसरों की बुराई करने की, दूसरों की आलोचना करने की आदत-सी होती है। ऐसे लोग सामने भले ही किसी की प्रशंसा करते हुए दिखें, लेकिन पीठ पीछे बुराई करते नजर आते हैं। वास्तव में बुराई करने की यह आदत व्यक्ति के अंदर दबी हुई कुंठा-सी होती है, जो बुराई करने के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। जब व्यक्ति स्वयं कुछ नहीं कर पाता, किसी क्षेत्र में सफल नहीं हो पाता, तो वह दूसरे सफल लोगों या कार्यकुशल लोगों के कार्यों में नुक्स निकालने लगता है और धीरे-धीरे किसी भी चीज में नुक्स निकालने, कमियाँ ढूँढ़ने की उसमें आदत-सी बन जाती है। ऐसे लोग भले ही सामने प्रशंसा के दो बोल बोल दें, लेकिन बाद में उनकी कमियाँ निकालने में किसी भी तरह की कोई कसर नहीं रखते।

कमियाँ ढूँढ़ना, नुक्स निकालना भी कोई आसान कार्य नहीं है। जब भी कोई कलाकार कोई कलाकृति बनाता है, तो यथासंभव अपनी कलाकृति की कमियों को पूरी तरह से दूर करने का प्रयास करता है। कार्यकुशल व्यक्ति अपने कार्य में इसलिए कुशल होता है; क्योंकि वह अपने कार्य में कमियों को प्रश्रय नहीं देता, कोई सफल व्यक्ति इसलिए सफल होता है; क्योंकि वह अपनी सफलता की राह में अपनी कमियों को दूर करके उन्हें अपनी ताकत बना लेता है लेकिन एक कुंठाग्रस्त व्यक्ति किसी भी कलाकार में, किसी भी कार्यकुशल व्यक्ति में, किसी भी सफल व्यक्ति के कार्यों में बड़ी ही सरलता से कमियाँ ढूँढ़ लेता है और उन्हें ढूँढ़कर, उन्हें बताकर वह ऐसे प्रसन्न होता है, जैसे उसने कमियों को उजागर कर कोई बहुत बड़ा कार्य कर दिया हो।

वास्तव में अपनी कमियाँ ढूँढ़ना एक कला है, अपनी कमियों को स्वीकारना और उन्हें दूर करना भी व्यक्ति को आना चाहिए और कमियाँ गिनाने वाले व्यक्ति के प्रति मन को मैला नहीं करना चाहिए। ऐसे लोगों से न तो मित्रता करनी चाहिए और न ही दुश्मनी। मित्रता इसलिए नहीं करनी चाहिए; क्योंकि ये हमेशा कमियाँ गिनाते रहेंगे, जिसके कारण व्यक्ति अपनी इतनी सारी कमियों को देखकर ही निराश हो जाएगा और अपनी खूबियों के बारे में सोच भी न पाएगा और दुश्मनी इसलिए नहीं करनी चाहिए; क्योंकि यदि ऐसे लोगों से दुश्मनी की जाएगी, तो हर पल ये हमारे मन में बसे रहेंगे और मन से हम इन्हें ही याद करते रहेंगे। इसलिए ऐसे लोगों की उपेक्षा करनी चाहिए, निकट आने पर तटस्थ भाव से इनके साथ व्यवहार करना चाहिए।

विश्वप्रसिद्ध पुस्तक 'हाउ टु विन फ्रेंड्स एंड इन्फ्लुएंस पीपुल' के लेखक डेल कार्नेगी के अनुसार—'आलोचना अहं तुष्टि का सबसे आसान तरीका है।' जिन लोगों को आलोचना करने की आदत होती है, उनका आत्मविश्वास तेजी से घटता-बढ़ता है। उन्हें अपने आप पर, काम पर विश्वास करने के लिए दूसरे नामों की जरूरत पड़ती है।

मनोवैज्ञानिक चिकित्सक डॉक्टर कार्ल रोजर्स का यह कहना है कि 'जिन व्यक्तियों को हमेशा दूसरों की बुराई करने की आदत होती है, यह जरूरी नहीं कि उनके मन में उक्त व्यक्ति के लिए विपरीत भावनाएँ ही हों। स्वभाव से उग्र और अशांत व्यक्ति को यह एहसास ही नहीं होता कि उसकी बातें कितनी दूर तक जा सकती हैं और दूसरों पर कितना असर डाल सकती हैं। इसलिए क्या ऐसे व्यक्ति की बातों को हमें गंभीरता से लेना चाहिए?'

डॉक्टर रोजर्स के अनुसार—'मेरे पास आने वाले कुछ मरीज इस तरह की कुंठा से ग्रस्त थे। उन्हें यह एहसास नहीं होता था कि उनके लगातार बुराई करते रहने से उनके दोस्त उनसे दूर जा सकते हैं या उन पर अविश्वास कर सकते हैं। जब हमने एक बीमारी मानकर इसका इलाज किया, तो इससे उन्हें काफी फायदा हुआ।'

आज की तारीख में यदि देखा जाए तो दूसरों की बुराई या आलोचना करने का रिवाज लगभग हर क्षेत्र में है। अपने को बड़ा बताना, दूसरों को छोटा दिखाना एक आम बात है। जिस क्षेत्र में जितनी अधिक प्रतिद्वंद्विता और प्रतिस्पर्धा है, वहाँ उतना ही झूठ और प्रपंच से भरा माहौल खड़ा किया जाता है। ऐसे लोगों की पहचान आसानी से हो जाती है, जो हमेशा दूसरों को काटकर अपनी राह मजबूत करने में लगे

रहते हैं। क्या इससे इन्हें फायदा होता है? क्या दूसरों की उपलब्धियों पर पाँव रखकर आगे बढ़ने वालों को दुनिया स्वीकारती है? इसका जवाब 'हाँ' या 'ना' में हो सकता है, लेकिन सच्चाई यह है कि आज हमारे समाज में ऐसे लोगों की तादाद बढ़ रही है, जो आगे बढ़ने के लिए सही-गलत का विचार किए बिना कुछ भी करने को तैयार हैं।

लोग सफल होना चाहते हैं, यशस्वी होना चाहते हैं और इस राह में उनके सामने जो बड़ी बाधाएँ आती हैं, उनसे बचकर निकलना चाहते हैं और छोटी बाधाओं को अपने रास्ते से ही हटा देना चाहते हैं; क्योंकि लोग बाधाओं से होकर गुजरना नहीं चाहते, इतना संघर्ष करना नहीं चाहते, इसलिए कठिनाई को स्वीकारने के बजाय, संघर्ष करने के बजाय, उन्हें जो सरल रास्ता लगता है, भले ही वो गलत ही क्यों न हो, उसे अपनाने में वो संकोच नहीं करते।

उदाहरण के लिए—परीक्षा में उत्तीर्ण होने और अच्छे अंक प्राप्त करने के लिए जो विद्यार्थी सालभर मेहनत नहीं करते, उन्हें यह चाह होती है कि कहीं से उन्हें प्रश्नपत्र पहले से पता चल जाए, भले ही इसकी कितनी भी कीमत देनी पड़े और अखबारों में यह खबरें भी प्राय: देखने को मिल जाती हैं कि प्रश्नपत्र पहले से लीक होने की वजह से अमुक परीक्षा निरस्त कर दी गई। परीक्षा के समय नकल करने के लिए परीक्षार्थी कई तरह के हथकंडे अपनाते हैं, ताकि उनकी नकल पकड़ी न जाए और वो सरलता से पास हो जाएँ।

इस तरह सालभर पढ़ने और मेहनत करने के बजाय जो विद्यार्थी केवल परीक्षा के समय नकल करने के तरीके ढूँढ़ने और प्रश्नपत्र पता करने के प्रयास में लगे रहते हैं, वो कठिन रास्ते को चुनने के बजाय, सरल रास्ता चुनने का प्रयास करते हैं। वो चुनौतियाँ स्वीकारने से घबराते हैं, इसलिए कड़ी मेहनत नहीं करते; बल्कि ऐसे काम करते हैं, जिनमें कम मेहनत हो। परिणाम भले ही उन्हें सफलता दे दे, लेकिन वे अपनी जिंदगी में वास्तव में सफल नहीं होते, इस बात का उन्हें पूरी तरह से एहसास होता है; क्योंकि जो सोना तपकर निखरता है, वो असली होता है और जिस धातु पर सोने की कलई चढ़ी होती है, उसे हमेशा यह डर होता है कि कहीं उसकी कलई उसका साथ न छोड़ दे, कहीं उसकी कलई न खुल जाए, लेकिन ऐसे लोग दूसरों की कलई खोलने में कोई कसर नहीं रखते। ऐसे लोग अपनी कमियों की ओर नहीं देखते, अपनी जड़ों को मजबूत नहीं करते और दूसरों की जड़ें हिलाने में जुटे रहते हैं, दूसरों की कमियाँ निकालने में लगे रहते हैं। इसलिए ऐसे लोगों से दूरी बनाकर रखनी चाहिए।

महाभारत की ओर यदि दृष्टि घुमाई जाए तो उसमें एक पात्र 'शकुनि' ऐसा था, जो बहुत कुटिल, चालाक, धूर्त व षड्यंत्र करने व षड्यंत्र बुनने में निपुण था। शकुनि गांधार नरेश था, उसकी प्रिय बहन 'गांधारी' का विवाह धृतराष्ट्र के साथ हो गया था, जो नेत्रहीन था। अपने नेत्रहीन पति का साथ देने के लिए गांधारी ने भी अपनी आँखों पर आजीवन पट्टी बाँध ली थी। चूँकि गांधार में धृतराष्ट्र के विवाह का प्रस्ताव गंगापुत्र भीष्म लेकर गए थे और इसलिए बिना यह जाने कि धृतराष्ट्र अंधे हैं; विवाह हो गया। विवशतावश विवाह का प्रस्ताव स्वीकार करने की जो कुंठा शकुनि के मन में उपजी, उसके फलस्वरूप शकुनि ने मन-ही-मन यह संकल्प ले लिया कि वह हस्तिनापुर की जड़ों को ही हिला देगा और अपनी कुटिल चालों से एक दिन हस्तिनापुर का विनाश कर देगा।

यही कारण था कि गांधारनरेश होते हुए भी शकुनि प्राय: हस्तिनापुर में रहा और बचपन से ही वह धृतराष्ट्र के ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन के मन में विषबीज बोता रहा। शकुनि के पास गंगापुत्र भीष्म के समान बल व पराक्रम नहीं था; अपने बल से वह किसी को भी पराजित नहीं कर सकता था, इसलिए वह किसी के भी सामने बहुत बड़ाई करता था, मीठी-मीठी बातें करता था, लेकिन दुर्योधन व उसके भाइयों के बीच वह दूसरों की बुराई करता था और भाँति-भाँति के षड्यंत्र करता था।

दुर्योधन के युवराज बनने की राह में सबसे बड़ा अवरोध पांडव थे, इसलिए उन्हें रास्ते से हटाने के लिए शकुनि ने बहुत से सरंजाम किए, जैसे—भीम को खीर में विष पिलाया, पांडवों को अग्नि में भस्म करने हेतु लाक्षागृह का षड्यंत्र किया, द्यूतक्रीड़ा के माध्यम से पांडवों को अपमानित किया, उनका समस्त राज्य ले लिया। इन सब षड्यंत्रों का परिणाम यह हुआ कि महाभारत युद्ध हुआ, जिसमें उसका भी विनाश हो गया। इस तरह जो दूसरों के लिए गड्ढा खोदते हैं, एक-न-एक दिन उसी गड्ढे में वो भी गिर जाते हैं। जो दूसरों का नुकसान करने की सोचते हैं, उनका भी किसी-न-किसी तरह से नुकसान हो ही जाता है।

हैरी पॉटर सिरीज की लेखिका जे.के. रोलिंग्स ने अपने अनुभवों को समेटते हुए यह लिखा है—'मैं जिंदगीभर ऐसे लोगों से जूझती रही हूँ, जिन्होंने मेरी लेखनी को कमतर, निकृष्ट और अविश्वसनीय बताया। ये लोग मुँह पर मेरी तारीफ करते और पीठ पीछे बुराई। क्या इससे मुझे नुकसान हुआ? नहीं। बल्कि फायदा ही हुआ। मैं बिना वजह कई लोगों को याद रह गई।'

वास्तव में आलोचनाओं का जवाब देने में जो शक्ति और ऊर्जा खरच होती हैं, उनसे कई रचनात्मक काम किए जा सकते हैं। इसलिए जो लोग आलोचनाओं का जवाब देने में लग जाते हैं, वे गलती करते हैं और जो आलोचनाओं की परवाह किए बिना अपने कार्यों पर ध्यान देते हैं, वे ही कुछ अच्छा कर पाते हैं। इसलिए आलोचनाएँ तो सुननी चाहिए। यदि वास्तव में आलोचना के अनुसार हमारे अंदर कमियाँ हैं, तो उन्हें दूर करने का प्रयास करना चाहिए, न कि आलोचना करने वाले की निंदा करनी चाहिए।

विद्वान पुरुषों का कहना है कि 'आप अपनी ऊर्जा कैसे खरच करेंगे, यह आपके ऊपर निर्भर करता है। अगर आप अपनी ऊर्जा और शक्ति दूसरों की बुराई करने में खरच कर देते हैं, तो यह मानकर चलिए कि इससे दूसरे व्यक्ति को कोई नुकसान नहीं होगा, बल्कि आपको ही इससे दोगुना नुकसान होगा।'

इसलिए समझदार व्यक्ति दूसरों की बुराई करने में अपना समय नहीं गँवाते, बल्कि उस समय का उपयोग अपनी रचनात्मकता को निखारने में, कार्यों को कुशलतापूर्वक करने में लगाते हैं। जिस व्यक्ति की नजर कमियों पर होती है, वह व्यक्ति आगे नहीं बढ़ सकता, लेकिन जिस व्यक्ति की नजर खूबियों पर होती है, वह उन खूबियों को अपनाने के लिए तेजी से आगे बढ़ता है। जिस तरह हीरे की खान खोदने वाले मजदूरों की नजर हीरे पर होती है, न कि वहाँ की मिट्टी पर, इसलिए वो हीरे की तलाश में बहुत गहरी खदान खोदने में सफल हो जाते हैं, यदि उनकी दृष्टि मिट्टी के ढेर पर होगी, तो वे खदान नहीं खोद पाएँगे; क्योंकि खदान खोदने में बहुत-सारी मिट्टी एवं कंकड़ पत्थर निकलते हैं।

इसी तरह जिन लोगों की दृष्टि खूबियों की ओर होती है, वे एक तरह से हीरे पर अपनी दृष्टि रखते हैं और जिन लोगों की नजर कमियों पर होती है, वे एक तरह से खदान से निकलने वाली मिट्टी पर अपनी दृष्टि रखते हैं और सबको यह पता है कि खदान से मिट्टी चाहे जितनी भी निकले, उसका कोई मूल्य नहीं है, मूल्य तो हीरे का है, जिसके लिए खदान खोदी जाती है।

हीरे का पत्थर मिट्टी की कई सतहों के पार कहीं दबा-छिपा होता है, इसलिए उसे निकालने के लिए मिट्टी को बाहर निकालना ही पड़ता है, बिना मिट्टी को निकाले हीरा निकालना संभव नहीं है। इसी तरह मनुष्य की कमियों को बाहर निकाले बिना खूबियों को निखारना संभव नहीं है और यदि कमियाँ निकालने का यह कार्य दूसरे लोग करते हैं, तो हमें उनके प्रति कृतज्ञ होना चाहिए और अपनी कमियों को स्वीकारते हुए उन्हें दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

वास्तव में व्यक्ति की कमियाँ महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, महत्त्वपूर्ण हैं उसकी खूबियाँ। इसलिए अपनी कमियों से, अपनी बुराइयों से, अपनी आलोचनाओं से व्यक्ति को परेशान नहीं होना चाहिए, बल्कि अपनी खूबियों को निखारने की ओर ध्यान देना चाहिए। जो दूसरों की बुराई करने में, दूसरों की आलोचना करने में रुचि लेते हैं, वे वास्तव में अपने मन की कुंठा को ही बाहर निकालते हैं, इसलिए ऐसे लोगों की ज्यादा परवाह नहीं करना चाहिए। ❑

युग-परिवर्तन का शुभारंभ अपनी मनोभूमि के परिवर्तन के साथ आरंभ करना होगा। हम लोग नवनिर्माण के संदेशवाहक एवं अग्रदूत हैं। परिवर्तन की प्रक्रिया हमें विवेक के आधार पर विनिर्मित करनी चाहिए। जो असत्य, अवांछनीय, अनुपयोगी है; उसे छोड़ने का साहस दिखाएँ। —*परमपूज्य गुरुदेव*

भक्ति साधन भी है और साध्य भी

अपने उद्गम से निकलकर एक नदी आगे बही जा रही थी। वह अदम्य उत्साह, उमंग और उफान से बही जा रही थी कि सहसा रास्ते में पड़ी ढेर सारी शिलाएँ उसके मार्ग में बाधा बनकर आ खड़ी हुईं। नदी कुछ देर सकपकाई। स्वयं को सँभाला और उन शिलाओं को अपने प्रबल वेग से तितर-बितर करती हुई वह आगे निकल गई, परंतु राह में अभी भी मुश्किलें कम नहीं थीं।

नदी ने देखा सामने विशाल वनक्षेत्र उसका रास्ता रोके खड़ा है। इस बार भी नदी घबराई नहीं, वह दूने उत्साह व उमंग से विशाल वनक्षेत्र को पार करती हुई आगे निकल गई। यह क्या? आगे बढ़ती नदी ने अब देखा सामने कई पर्वत-शृंखलाएँ रास्ता रोके बैठी हैं। इस बार की बाधाएँ तो पिछली सभी बाधाओं से बड़ी भारी और भयावह थीं, परंतु नदी का उफान भी कहाँ कम था। नदी ने अपने वेग को पहले से भी अधिक प्रबल व भयंकर बना लिया।

वह कई दिनों तक उन पर्वत-शृंखलाओं से जूझती रही, लड़ती रही। कई बार थकी और झुँझलाई भी, परंतु उन बाधाओं से डरकर पीछे जाने को, पीछे मुड़ने को कतई तैयार न हुई। आखिर वह घड़ी भी आ गई, जब अपने प्रबल, प्रलयंकर, भयंकर वेग से उसने सामने खड़ी विशाल पर्वत-शृंखलाओं को धराशायी कर दिया। उन्हें तोड़ती हुई वह आगे निकल गई। जैसे-जैसे वह अपनी मंजिल के करीब पहुँच रही थी, वैसे-वैसे नई-नई चुनौतियाँ सामने आ रही थीं, परंतु अब मंजिल के करीब पहुँचने की आहट भी उसे मिलने लगी थी।

अपने आराध्य से मिलन की उसकी आतुरता, आकुलता, व्याकुलता, व्यग्रता बढ़ती जा रही थी। वह बिना विराम एवं विश्राम के आगे बढ़ती ही रही और अब तो अपने आराध्य के पास होने की, पहुँचने की अनुभूति उसे होने लगी थी। उसने देखा उसके आराध्य विशाल महासागर के रूप में अपनी बाहें फैलाए उसके आलिंगन को तैयार खड़े हैं। अपने आराध्य का मधुर आलिंगन पाकर नदी, सिंधु बन गई। सरिता, सागर बन गई।

वह नदी अपने आराध्य की खोज में निकली थी। वह खोज आज पूरी हो चुकी थी। अब नदी एवं सागर— दोनों मिलकर एक हो गए थे। द्वैत, अद्वैत हो गया था। सरिता और सागर के मिलन बिंदु पर पूनम की धवल किरणें छिटक रही थीं। चंद्रमा का पूर्ण धवल रूप, सौंदर्य उस मिलन बिंदु पर उतरकर सरिता और सागर के एक हो जाने की, अद्वैत हो जाने की दास्तान पूर्ण जोश से कह रहा था।

जैसे अपने आराध्य को पाकर सरिता सिंधु बन गई, वैसे ही अपने आराध्य को पाकर, परमात्मा को पाकर जीवात्मा भी द्वैत से अद्वैत हो जाता है, बिंदु से सिंधु हो जाता है। जैसे नदियाँ विभिन्न मार्गों से होती हुईं अंततः समुद्र में विलीन हो जाती हैं, वैसे ही विभिन्न योग साधनों का, योग मार्गों का अवलंबन लेकर साधक भी ईश्वर को प्राप्त कर एक-न-एक दिन ईश्वर रूप हो ही जाता है। वह द्वैत से अद्वैत हो जाता है, बिंदु से सिंधु हो जाता है।

हाँ! यह साधक की अंतःप्रकृति पर निर्भर करता है कि वह किस मार्ग का अवलंबन करके ईश्वर को पाना चाहता है; ईश्वर से मिलना चाहता है। मार्ग अनेक हैं, पर मंजिल तो एक ही है। मार्ग में बाधाएँ भी अगणित हैं। साधना के मार्ग पर चुनौतियाँ भी कम नहीं हैं, परंतु मन में सच्ची लगन हो, ईश्वर को पाने की सच्ची तड़प हो तो हजारों बाधाएँ भी, चुनौतियाँ भी, मुश्किलें भी हमें रोक नहीं पातीं और अंततः हमें अपनी मंजिल मिलकर के ही रहती है।

ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, ध्यानयोग आदि ईश्वर प्राप्ति के विभिन्न मार्ग हैं, साधन हैं जिनमें से हम अपनी प्रकृति, रुचि, अभिरुचि के अनुसार किसी भी मार्ग के सहारे, साधन के सहारे अपनी मंजिल को पा सकते हैं। अपने आराध्य को पा सकते हैं, परंतु हाँ! इन सभी साधनों में भक्ति, निस्संदेह सबसे अधिक सरल है। भक्ति का अर्थ है—दिव्य प्रेम, ब्रह्म से सत्य प्रेम, परमप्रभु, परमपिता से प्रेम।

भक्तियोग भावनाप्रधान और प्रेमी प्रकृति वाले व्यक्ति के लिए उपयोगी है। वह ईश्वर के साकार, सगुण रूप से प्यार करता है, प्रेम करता है अथवा वह ईश्वर के निर्गुण, निराकार रूप से प्रेम करता है। वह ईश्वर के साकार, सगुण रूप, मूर्ति आदि का आश्रय लेता है। विभिन्न क्रिया-अनुष्ठान, जल, पुष्प, गंध, धूप, दीप, नैवेद्य आदि से ईश्वर की पूजा करता है।

साधक ईश्वर की अर्भ्यथना, आराधना करता है तो दूसरी ओर वह निर्गुण, निराकार ब्रह्म को ब्रह्मांड के कण-कण में संव्याप्त देखता है। वह इस विश्व-ब्रह्मांड को उसी निर्गुण-निराकार ब्रह्म की अभिव्यक्ति मानता है। वह संपूर्ण जगत् में ईश्वर की उपस्थिति की अनुभूति करता है। वह सूर्य, चंद्र, तारे, सिंधु, नदियाँ सब में ईश्वर को अभिव्यक्त होते हुए देखता है। वह सभी जीवों में ईश्वर को देखता है। वह स्वयं में सबको और सबको स्वयं में देखने लगता है। वह प्रत्येक श्वास के साथ भक्ति में लीन होने लगता है और उसका यही प्रेम उसमें उल्लास, उमंग भरता है और उसके अस्तित्व की गहराइयों को छूने लगता है।

यह भगवत्प्रेम हमें संसार के उन समस्त बंधनों से मुक्त करता है, जिनसे बँधकर हम अब तक स्वयं से दूर थे; क्योंकि यह भक्ति हमारे भीतर अनंत के द्वार खोलती है। यही भक्ति हमारे नेत्रों से दिव्य प्रेम के रूप में अभिव्यक्त होती है। यह प्रेम हमारे चिंतन, चरित्र और व्यवहार में पल-पल प्रतिबिंबित होने लगता है। भक्ति स्वयं में साधन भी है और साध्य भी। साधन के रूप में यह हमारी चित्तशुद्धि करती है और साध्य के रूप में स्वयं भक्ति ही प्रेम व परमेश्वर का रूप धारण कर लेती है।

प्रेम एक सार्वभौम संवेग है। यह जब भक्त के हृदय में प्रवाहित होता है तो भक्त भी उस प्रेम-प्रवाह में बहता हुआ, प्रेम के अथाह सागर परमेश्वर की ओर प्रवाहित होने लगता है, वैसे ही जैसे नदियाँ समुद्र की ओर, सरिताएँ सिंधु की ओर प्रवाहमान हो उठती हैं।

भक्त—भक्ति के प्रवाह में, प्रेम के प्रवाह में बहता हुआ आगे बढ़ता जाता है। रास्ते में चुनौतियाँ भी आती हैं, मुश्किलें भी आती हैं। कर्म-संस्कारों के विशाल वनक्षेत्र भी आते हैं। कामनाओं, वासनाओं की एक से बढ़कर एक पर्वत-शृंखलाएँ भी आती हैं।

प्रेम के प्रवाह में बहता हुआ व्यक्ति जब संस्कारों के सघन वन में से होकर गुजरने लगता है तब उसे विभिन्न जन्मों में स्वयं के द्वारा किए गए शुभ-अशुभ, अच्छे-बुरे, पुण्य-पाप आदि विभिन्न कर्मों के संस्कारों के बड़े-बड़े वटवृक्ष बाधा बन खड़े दिखते हैं। उसे दिखते हैं स्वयं के द्वारा किए गए पापकर्म संस्कारों के एक से बढ़कर एक बड़े-बड़े कँटीले वृक्ष जिनमें वह उलझने लगता है, जिनके काँटे उसे चुभने लगते हैं और उसके प्रवाह को, वेग को प्रभावित करते हैं, उसे आगे बढ़ने से, आराध्य से मिलने से रोकते हैं।

उसे दीखते हैं वे सारे बंधन, जो विभिन्न जन्मों में उसने स्वयं ही रचे थे। संसार व भौतिक सुख-साधनों के प्रति उसकी घोर आसक्ति बड़े-बड़े वृक्ष बनकर उसकी राह में बाधा बने खड़े दिखते हैं। संस्कारों के इस बीहड़ वन में, सघन वन में, वह अपने ही कर्मों के भयंकर व भयावह रूप को देखकर भयभीत होता है, घबराता है और भक्ति को बीच में ही छोड़कर भागने का उसका मन करता है।

यदि साधक की भक्ति सकाम होती है, गौणी होती है तब तो वह इस सघन वन को पार नहीं कर पाता और उलटे पाँव दुम-दबाकर भाग खड़ा होता है, परंतु यदि भक्ति निष्काम हो, निष्कपट हो, यदि भक्ति परा हो तो वह इस सघन वन को भी आसानी से पार कर जाता है; क्योंकि निष्काम भक्ति का, पराभक्ति का प्रवाह इतना प्रबल होता है कि उसके प्रलयंकर, भयंकर वेग में उसके संस्कारों के सघन वन में खड़े बड़े-बड़े वृक्ष एक-एककर धराशायी होने लगते हैं और वह उस विशाल वन-क्षेत्र को पार करता हुआ आगे बढ़ता जाता है। यदि चित्त अभी भी संस्कारशून्य नहीं हुआ है तब वह अपनी मंजिल के पास पहुँचकर भी मंजिल से दूर ही रहता है अर्थात सबीज समाधि में ही होता है।

जैसे ही उसका चित्त पूर्णत: संस्कारशून्य हुआ, वैसे ही उसकी भक्ति अपने पूर्ण रूप में, प्रबलतम व प्रलयंकर रूप में प्रवाहित होती हुई रास्ते में आगे खड़ी वासनाओं, कामनाओं की बड़ी-बड़ी पर्वत-शृंखलाओं को धराशायी करती हुई निर्बीज समाधि को प्राप्त करती हुई अपने आराध्य के आलिंगन में समा जाती है। वैसे ही, जैसे नदियाँ सागर में समा जाती हैं। फिर जीवात्मा और परमात्मा, दोनों मिलकर एक हो जाते हैं; द्वैत, अद्वैत हो जाते हैं। वैसे ही, जैसे सरिता सागर से मिलकर स्वयं भी सागर बन जाती है। ❑

अहं का विसर्जन एवं समर्पण

समर्पण का अध्यात्म के क्षेत्र में विशेष महत्त्व बताया गया है, लेकिन सामान्य मन:स्थिति में यह घटित नहीं हो पाता। सामान्य मन अहं का घनीभूत रूप होता है। अपने देहबल, बुद्धिबल, धनबल, जनबल, तप एवं विद्याबल के मद में चूर व्यक्ति समर्पण नहीं कर पाता। उसे लगता है कि जब वह स्वयं में समर्थ है तो वह क्यों किसी के आगे झुके, हाथ फैलाए। ईश्वर की सत्ता भी उसे गौण प्रतीत होती है, लेकिन जब किन्हीं कारणवश इन बलों का क्षय होता है या व्यक्ति के सकल पुरुषार्थ विकट चुनौतियों के समक्ष बौने पड़ने लग जाते हैं तथा उसे अपनी देहगत एवं लौकिक सीमाओं का तीखा एहसास होता है तो व्यक्ति का गरूर टूटता है तथा समर्पण की स्थिति बनती है।

जब सब कुछ अनुकूल होता है तो भगवान को हृदय से कौन याद करता है? जब भारी दु:ख, कष्ट एवं विपदा की घड़ियाँ आती हैं और व्यक्ति को अपनी मानवीय सीमाओं का गहरा एहसास होता है तब वह उस सर्वसमर्थ, सर्वव्यापी, अंतर्यामी सत्ता की ओर उन्मुख होता है और उसे सहायता के लिए पुकारता है। ऐसे में व्यक्ति का श्रद्धाभाव जगता है और अपने दु:ख-कष्ट के आत्यंतिक समाधान के लिए वह प्रभु की शरण में जाता है।

ऐसे में जीवन में आने वाले दु:ख-कष्ट, रोग-शोक, पीड़ा-पतन आदि सब एक तरह से छद्म रूप में ईश्वर के वरदानस्वरूप होते हैं, जिन्हें हम विकल अवस्था के कारण तात्कालिक रूप में समझ नहीं पा रहे होते हैं। ये विषम पल आस्थावान हृदय को श्रद्धा, भक्ति एवं प्रभु सुमिरन का उपहार देकर जाते हैं तथा जीवन की चुनौतियों का सामना करने का विश्वास, सामर्थ्य एवं बल प्रदान करते हैं।

महाभारत के रणक्षेत्र में विषादग्रस्त अर्जुन एवं भगवान श्रीकृष्ण संवाद का प्रकरण जो भगवद्गीता के नाम से प्रसिद्ध है—उपरोक्त सत्य को भली प्रकार व्यक्त करता है और अपनी परिणति में मानवमात्र को एक अमर संदेश देकर जाता है।

अर्जुन अपने युग के श्रेष्ठतम धनुर्धर एवं महान योद्धा थे। द्वारकाधीश श्रीकृष्ण से इनका तब तक का परिचय एक मित्र, सारथी एवं पारिवारिक रिश्तेदारी का था, लेकिन महाभारत के रणक्षेत्र में जब इनका रथ दोनों सेनाओं के मध्य खड़ा हुआ तो युद्ध में अपने सगे-संबंधियों, रिश्तेदारों को देखकर अर्जुन के हाथ-पैर फूल गए जो युद्ध के लिए सामने खड़े थे। अर्जुन की बुद्धि जवाब दे गई, कर्त्तव्यचेतना किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गई तथा उसे मूर्च्छना की स्थिति आ गई। अर्जुन गहरे विषाद की अवस्था में आ गए और तब उन्होंने एक शरणागत शिष्य के भाव से भगवान श्रीकृष्ण से मार्गदर्शन की पुकार की।

ऐसी विषम परिस्थिति में एक कुशल सारथी के रूप में भगवान श्रीकृष्ण ने विषादग्रस्त अर्जुन के जीवन की बागडोर सँभाली और उसका मार्गदर्शन किया। उन्होंने अर्जुन के मन का संदेह दूर किया। अंतत: शरणागत की भाव अवस्था में अर्जुन के चित्त पर छाए विषाद का सघन कुहासा छँटा, खोई हुई स्मृति लौटकर आई, उसे उसके कर्त्तव्य का बोध हुआ और वह धर्मयुद्ध के लिए तैयार हो गया।

ठीक इसी प्रकार जीवन के रणक्षेत्र में जब तक व्यक्ति की तर्कबुद्धि एवं अहं सक्रिय रहते हैं, तब तक गुरु उसे एक सामान्य देहधारी व्यक्ति के रूप में दिखता है। अत: ईश्वर का दिव्य मार्गदर्शन उसे उपलब्ध नहीं हो पाता। जब दु:ख, कष्ट एवं विषाद के चरम पर व्यक्ति के मानवीय प्रयास एवं अहं बौने पड़ जाते हैं, तब जाकर समर्पण की स्थिति बनती है। हृदयकेंद्र से आर्त्त पुकार उठती है और समर्थ गुरु का मार्गदर्शन मिलता है। उनका सूक्ष्म संरक्षण अनुभव होता है। हाँ! इसके लिए सच्चे हृदय से उनका आवाहन करना पड़ता है, अहं का विसर्जन करना पड़ता है। अपनी अंतश्चेतना को ग्रहणशील बनाकर उनके दिव्यसंदेशों व निर्देशों का अनुसरण करना पड़ता है। कर्त्तव्य की कसौटी पर अपने शिष्यत्व को खरा सिद्ध करना पड़ता है।

ऐसी स्थिति में ही प्रत्येक शिष्य एवं भक्त के जीवन में समर्थ गुरुसत्ता का ईश्वरीय संरक्षण एवं दैवी प्रवाह सक्रिय हो पाता है। तब भगवान श्रीकृष्ण का वह दैवी आश्वासन मूर्त रूप लेता है, जहाँ वे अर्जुन से कहते हैं— **सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज**। अर्थात सब कर्त्तव्यों का परित्याग कर तू मेरी शरण में आ जा। मैं तुझे समस्त दुःख एवं शोक से मुक्त कर दूँगा।

वे कहते हैं कि—शरणागत के योग-क्षेम का वहन मैं स्वयं करता हूँ और पापी-से-पापी शरणागत भी शीघ्र ही साधु अर्थात श्रेष्ठ इनसान बन जाता है। चाहे शरणागत आर्त्त हो (दुःख से पीड़ित) या अर्थार्थी हो (अभाव से विकल) या जिज्ञासु या ज्ञानी, सबको अपनी समर्थ नाव में मैं पार ले जाता हूँ। ऐसा समर्पण ही साधक को भगवच्चेतना से एकाकार करा पाता है। ❑

महाभारत का महासमर समाप्त हो चुका था। गंगापुत्र भीष्म, धर्मराज युधिष्ठिर को तत्त्वोपदेश देने के पश्चात, राजधर्म-नीतिज्ञान की शिक्षा देने के पश्चात, महाप्रयाण कर चुके थे। महर्षि वेदव्यास सहित अन्य ऋषियों ने युधिष्ठिर को सम्राट के पद पर अभिषिक्त कर दिया था।

यह सम्राट युधिष्ठिर का द्वितीय अभिषेक था। पहले वे राजसूय यज्ञ करने के बाद इंद्रप्रस्थ नगरी में सम्राट पद ग्रहण कर चुके थे। उस समय चारों ओर खुशियाँ-ही-खुशियाँ थीं। ऋषियों, भक्तों एवं ज्ञानियों, तपस्वियों का महासमुदाय भी आ जुटा था। उल्लास जैसे सब ओर बिखरा पड़ रहा था। इस महोल्लास के बीच धर्मराज युधिष्ठिर, महारानी द्रौपदी के साथ राजसिंहासन पर आसीन हुए थे। अवसर आज भी कुछ वैसा ही था, फिर से महाराज युधिष्ठिर एवं महारानी द्रौपदी राजसिंहासन पर आसीन थे। वंदीजन सम्राट का जयघोष कर रहे थे। महावीरों, महाज्ञानियों, महातपस्वियों से सदा सुशोभित रहने वाली हस्तिनापुर की राजसभा में योगेश्वर श्रीकृष्ण ने राजमाता कुंती से पूछा—"बुआ! अब तुम्हारे पुत्र विजेता हैं। आप राजमाता हैं। ऐसे में आपको और क्या चाहिए?"

राजमाता कुंती ने श्रीकृष्ण की ओर देखा और मुस्कराईं। फिर कुछ क्षण रुककर वे बोलीं—"हे कृष्ण! यदि तुम मुझे देना ही चाहते हो, तो मुझे दुःखों का वरदान दो।" श्रीकृष्ण ने पूछा—"वह क्यों बुआ, आपने तो संपूर्ण जीवन दुःख ही उठाए हैं। दीर्घकाल के बाद ये सुख के क्षण आए हैं, तब ऐसा क्यों कह रही हैं?" इसके उत्तर में कुंती बोलीं—"वह इसलिए; क्योंकि दुःखों में तुम्हारे भजन का क्रम अखंड बना रहता है। परिस्थितियों में भले ही दुःखों की काली छाया बनी रहे, परंतु मनःस्थिति में भक्ति का उजाला निरंतर बना रहता है।"

अनसुनी न करें अंतरात्मा की आवाज

एक बार एक डाकू गुरु नानकदेव के पास आया और उनके चरणों में शीश झुकाते हुए बोला—''महात्मन्! मैं बहुत ही बुरा व्यक्ति हूँ। मैं चोरी, डकैती आदि बुरे कार्यों में ही हमेशा लिप्त रहता हूँ, परंतु अब मैं अपने जीवन से तंग आ गया हूँ। हे महात्मन्! अब मैं एक नई जिंदगी जीना चाहता हूँ। मैं अब नेकी और सच्चाई के रास्ते पर चलकर अपना जीवन सुधारना चाहता हूँ, परंतु हे महात्मन्! मैं ऐसा कर नहीं पा रहा हूँ। मैं स्वयं को सुधारना तो चाहता हूँ, बदलना तो चाहता हूँ, परंतु मैं ऐसा कर नहीं पा रहा हूँ।''

वह बोला—''मैंने सुना है कि आपका ज्ञान पाकर, उपदेश पाकर बहुत से लोगों ने बुराई को छोड़कर अच्छाई व सच्चाई की राह पर चलना सीखा है। सो हे महात्मन्! कृपया आप अपने उपदेशों से मेरे जीवन को भी आलोकित करिए। मुझे आप कोई ऐसा उपाय बताएँ, जिससे कि मैं सच्चाई की राह पर चल सकूँ।''

गुरु नानकदेव बोले—''वत्स! यदि तुम स्वयं को सचमुच बदलना चाहते हो तो तुम आज से चोरी करना और झूठ बोलना छोड़ दो, फिर सब ठीक हो जाएगा।'' गुरु नानकदेव की बातें सुनकर वह व्यक्ति उन्हें प्रणाम करता हुआ वहाँ से चला गया। कुछ दिनों बाद वह फिर आया और गुरु नानकदेव से बोला—''महात्मन्! मैंने आपके उपदेश के अनुसार झूठ बोलने और चोरी आदि बुरे कर्मों से बचने का बहुत प्रयास किया, पर मुझसे ऐसा हो न सका और चाहकर भी मैं स्वयं को न बदल सका। आप कृपा करके मुझे कोई दूसरा उपाय बताइए।''

गुरु नानकदेव ने उसे कहा—''यदि तुमसे चोरी करना, झूठ बोलना नहीं छूट रहा है तो तुम कोई दूसरा उपाय करो। तुम्हारे मन में जो आए वो करो, परंतु दिनभर झूठ बोलने, चोरी करने, डाका डालने के बाद शाम को लोगों के सामने अपने किए हुए कार्यों का बखान कर दो।''

उस व्यक्ति को यह उपाय अधिक सरल जान पड़ा। वह गुरु नानकदेव को प्रणाम कर वहाँ से चल पड़ा। इस बार वह काफी दिनों तक गुरु नानकदेव के पास नहीं आया। वह दिनभर चोरी करता, डाका डालता और जिसके घर में चोरी करता उसकी चौखट पर यह सोचकर पहुँचता कि गुरु नानकदेव के कहे अनुसार अपने दिनभर के कर्मों का बखान कर आऊँगा, परंतु वह ऐसा नहीं कर पाया।

वह पुनः गुरु नानकदेव के पास पहुँचा और बोला—''महात्मन्! मैं इस बार भी आपके कहे अनुसार नहीं कर सका। अब मैं क्या करूँ?'' गुरु नानकदेव बोले—''तुम जिस घर में चोरी करते हो, डाका डालते हो; उस घर के लोगों के सामने यदि तुम ऐसा नहीं कर पा रहे हो तो एक और उपाय है। तुम अपने इन कर्मों का बखान अपने आस-पड़ोस के लोगों के समक्ष रोज शाम को कर दिया करो।'' उस व्यक्ति को लगा यह उपाय ज्यादा सरल है। इसे तो मैं अवश्य ही कर सकता हूँ।

वह पुनः वहाँ से चला गया। वह दिनभर लोगों से झूठी बातें करता रहा, किसी के घर चोरी भी कर आया, और शाम को अपने घर पहुँच गया। वह चोरी का सामान अपने घर में रखकर बाहर निकला और अपने आस-पास के लोगों के बीच जा पहुँचा। उसके पड़ोस के दर्जनों लोग बैठे थे। उनके बीच में बैठकर उसने चोरी, डाका डालने, झूठ बोलने आदि बुरे कर्मों का बखान करने का कई बार प्रयास किया, परंतु वह जैसे ही कुछ कहने के लिए अपना मुख खोलता, वैसे ही उसके मन में लज्जा आने लगती। संकोच होने लगता। उसे अपनी बातों को कहने में मन-ही-मन ग्लानि होने लगती और इस प्रकार वह इस बार भी चाहकर अपने कर्मों का बखान नहीं कर सका।

वह पुनः गुरु नानकदेव के पास पहुँचा उनके चरणों में मस्तक रखकर बिलखकर रोने लगा और उनसे कहने लगा—''हे महात्मन्! मुझे आपके उपदेश का मर्म समझ में आ गया है। मुझे अपने बुरे कर्मों का बखान करने में घोर लज्जा आती है, संकोच होता है, ग्लानि होती है। बुरे कर्मों का कोई बखान कर भी कैसे सकता है? बखान और प्रशंसा तो अच्छे कर्मों की ही की जा सकती है, इसलिए मैं इन बुरे कर्मों को आज से त्याग रहा हूँ।''

गुरु नानकदेव बोले—''वत्स! जिन कर्मों को करने में, कहने में आत्मग्लानि होती हो, उन कर्मों को त्याग ही देना चाहिए। बुरे कर्म करने में व्यक्ति को आत्मग्लानि ही मिल सकती है, आत्मसंतुष्टि नहीं। जब भी कोई व्यक्ति बुरा कर्म करता है तब उसकी अंतरात्मा उसे ऐसा करने से रोकती है, परंतु स्वयं पर नियंत्रण न होने के कारण व्यक्ति अपनी अंतरात्मा की आवाज को अनसुनी कर देता है और बुराई की राह पर चल पड़ता है। फिर बुरे कर्म करते-करते वह अंतरात्मा की आवाज भी नहीं सुन पाता है, न ही समझ पाता है। उसके अंत:करण में आत्मग्लानि, अशांति और हाहाकार ही मचा रहता है। परंतु जो अपनी अंतरात्मा की पुकार सुनकर सदा नेकी और सच्चाई की राह पर चलता है, उसके अंत:करण में हमेशा आनंद की लहरें उठती रहती हैं, जिनसे वह सदा आनंदित रहता है।''

वे बोले—''सेवा, परोपकार, सच्चाई, नेकी आदि शुभ कर्म करने से ही आत्मा संतुष्ट होती है; तृप्त होती है और आनंदित रहती है। ईश्वर की आवाज ही अंतरात्मा में उतरकर हमें बुरे कर्मों को करने से रोकने का प्रयास करती है, इसलिए हमें अपनी अंतरात्मा की आवाज कभी अनसुनी नहीं करनी चाहिए।''

गुरु नानकदेव के इस दिव्य संदेश को हृदयंगम करता हुआ वह व्यक्ति वहाँ से चला गया, परंतु इस बार वह व्यक्ति वह नहीं था, जो कुछ देर पूर्व चोरी करके गुरु नानकदेव के पास पहुँचा था।

वह व्यक्ति तो गुरु नानकदेव के उपदेश को हृदयंगम करते ही अपने पुराने आवरण को, अपनी पुरानी आदतों को, अपनी पुरानी प्रवृत्ति व प्रकृत्ति को गुरु नानकदेव के चरणों में छोड़ आया था। एक नई सोच, नई दृष्टि लेकर, अपनी आत्मा में उनके उपदेश का आलोक भरकर, अपने नेत्रों में ज्ञान की नई रोशनी लेकर, नई दृष्टि पाकर वह बदल चुका था। ❑

श्रावस्ती के दो युवकों में बड़ी प्रगाढ़ मैत्री थी, दोनों ही दूसरों की जेब काटने का धंधा करते थे। एक दिन भगवान बुद्ध का एक स्थान पर प्रवचन चल रहा था। अच्छा अवसर जानकर दोनों मित्र वहीं जा पहुँचे। उनमें से एक को भगवान बुद्ध के प्रवचन बहुत अच्छे लगे और वह ध्यानावस्थित होकर उन्हें सुनने लगा।

दूसरे ने कई जेबें इस बीच साफ कर लीं। शाम को दोनों घर लौटे। एक के पास धन था, दूसरे के पास सद्विचार। गिरहकट ने व्यंग्य करते हुए कहा—''तू बड़ा मूर्ख है रे, जो दूसरों की बातों से प्रभावित हो गया। अब इस पांडित्य का ही भोजन पका और पेट भर।''

अपने पूर्वकृत कर्मों से दु:खी दूसरा गिरहकट तथागत के पास लौटा और उनसे सब हाल कहा। बुद्ध ने समझाया—''वत्स! जो अपनी बुराइयों को मानकर उन्हें निकालने का प्रयत्न करता है, वही सच्चा पंडित है, पर जो बुराई करता हुआ भी पंडित बनता है, वही मूर्ख है।''

स्व-संकेतों से करें व्यक्तित्व का निर्माण

स्व-संकेत वे सशक्त विचार एवं भाव हैं, जो सीधे हमारे अचेतन या अव्यक्त मन में गहरे उतर जाते हैं और तदनुरूप हमारे अंतर्मन की रचना करते हैं तथा हमारे व्यवहार को प्रभावित करते हैं। यदि ये संकेत सकारात्मक हुए तो जीवन में सुख-शांति एवं उन्नति के प्रसून खिलते हैं और यदि ये संकेत नकारात्मक हुए तो ये ही व्यक्ति के जीवन को कंटकाकीर्ण बना देते हैं। ये संकेत व्यक्ति द्वारा अपने विश्वास, संकल्प एवं मनोभूमि के अनुरूप स्वयं द्वारा भी अपने अव्यक्त या अचेतन मन में संप्रेषित होते रहते हैं और जाने-अनजाने में समाज, परिवेश एवं दूसरों द्वारा भी इन संकेतों का प्रभाव हमारे अचेतन मन पर पड़ता है, जहाँ मानसिक ग्रंथियों का जाल-सा बिछा रहता है।

वास्तव में अव्यक्त मन शक्ति का भंडार है, जिसका सही उपयोग हम प्राय: नहीं कर पाते। साथ ही दूषित वातावरण, कठोर व्यवहार एवं विषम परिस्थितियों के कारण अव्यक्त मन का निर्माण उचित रीति से नहीं हो पाता और अनजाने में ही दीनता-हीनता, तुच्छता एवं नीचता की ग्रंथियाँ ऐसे मन में अपना स्थान सदा के लिए बना लेती हैं।

एक शिशु का कोमल मन अपने माता-पिता, अभिभावकों एवं परिवेश के संकेतों को सीधे अव्यक्त मन में ग्रहण करता है और इनके अनुरूप उसका निर्माण होता रहता है। यदि माता-पिता सतत प्रोत्साहन देते हुए राजा बेटा या बिटिया रानी के अंतर्मन में सकारात्मक संकेतों का संप्रेषण करते रहते हैं तो संतान का विकास सही दिशा में होता है और यदि उसे हमेशा नालायक, बुद्धू, गधा आदि कहकर कोसते रहते हैं तो संतान के कोमल मन पर इसका गहरा दुष्प्रभाव पड़ता है। ऐसे में विकसित नकारात्मक ग्रंथियाँ व्यक्ति को जीवनभर आक्रांत किए रहती हैं।

इसी तरह जिन विचारों, भावनाओं एवं कल्पनाओं का हम दृढ़तापूर्वक चिंतन करते हैं, जिन आदर्शों का हम दीर्घकाल तक सतत मनन करते हैं—वे अव्यक्त मन में गहरे उतर आते हैं। यदि ये संकेत निकृष्ट हुए तो व्यक्ति के गुणों का क्षय करते हैं, चरित्र को निर्बल बनाते हैं और शत्रु की भाँति जीवन को नष्ट-भ्रष्ट करते हैं। इसके विपरीत यदि ये संकेत शुद्ध एवं शुभ हुए तो व्यक्ति के सच्चे मित्र की भाँति जीवन को सद्गुणों से भर देते हैं, उसके चारों ओर एक सकारात्मक वातावरण का निर्माण करते हैं और व्यक्ति को उन्नति के उच्च शिखर पर आरूढ़ कर देते हैं। वस्तुत: शुभ संकेत आत्मा का प्राण हैं, जो जीवन में नवीन चेतनता का संचार करते हैं। व्यक्तित्व के नवनिर्माण का रहस्य इन्हीं संकेतों में छिपा हुआ है।

अत: हम ईमानदारीपूर्वक अपना मूल्यांकन करें कि हमारी अंतर्भूमि किस तरह के संकेतों से भरी हुई है? जाने-अनजाने में कौन-सी ग्रंथियाँ हमारे मन में गहरी जड़ जमा चुकी हैं, जो हमारे जीवन की प्रसन्नता एवं खुशहाली के मार्ग में रोड़ा बनी हुई हैं? परिवार, समाज या परिवेश के जो भी प्रभाव हमारे अंतर्मन पर अंकित हो चुके हैं, प्रयासपूर्वक हम इनका परिमार्जन कर सकते हैं, इन्हें हटा सकते हैं और इनके स्थान पर उचित स्व-संकेतों के माध्यम से अपनी मनचाही सृष्टि की रचना कर सकते हैं।

इसके लिए दिन का कोई एकांत, शांत एवं कोलाहलरहित स्थान एवं समय निर्धारित कर आत्मनिरीक्षण के लिए बैठें। बेहतर होगा कि एक कॉपी व पेन लेकर बैठें। नोट करते जाएँ कि अंत:क्षेत्र में कौन-कौन से अवांछनीय विचारों एवं मिथ्या कुकल्पनाओं की घास-फूस उग आई है? कौन से अपवित्र एवं कुत्सित विचारों की झाड़ियाँ खड़ी हो गई हैं? कौन-कौन-सी चिंताएँ हमें उद्विग्न कर रही हैं? कौन-कौन-सी शूलमयी स्मृतियाँ चित्त को विक्षुब्ध कर रही हैं? ऐसे कौन से भय-भ्रांतियाँ एवं संशय हैं, जो आत्मशक्ति का क्षय कर रहे हैं और शरीर को जर्जर तथा मन को निर्बल बना रहे हैं।

साथ ही यह भी निरीक्षण करते चलें कि हमारी स्वयं के विषय में क्या-क्या धारणाएँ बन गई हैं? हमने कहाँ तक अपने आप को समझा है? हमारे विश्वास, हमारे मंतव्य, हमारी आकांक्षाएँ क्या हैं? हमारे जीवन के ध्येय एवं आदर्श कितने स्पष्ट हैं? वस्तुत: हम चाहते क्या हैं? हम अपनी

अंतर्ध्वनि का कितना अनुसरण करते हैं ? हम किस बिंदु पर आकर जीवन के भय, प्रलोभनों एवं दबावों के समक्ष घुटने टेक देते हैं ? कौन से भय हमें विचलित करते हैं ? किस तरह के विचारों के संग हम अपना अधिकांश समय व्यतीत करते हैं ? हम कितना अपने मन के स्वामी अनुभव करते हैं और कितना इसका दास ? कागज पर इन प्रश्नों का उत्तर ईमानदारीपूर्वक व्यक्त करने से ही वह भावभूमि तैयार होती है कि हम उचित स्व-संकेतों के माध्यम से अंतर्भूमि की निराई-गुड़ाई एवं सफाई कर सकें और अपनी मनवांछित संकल्प सृष्टि के अनुरूप सशक्त विचार-बीजों का आरोपण कर सकें।

वस्तुत: इन स्व-संकेतों का आधार हमारी श्रद्धा है। जितना हम स्वयं पर विश्वास करेंगे, उतने ही संकेत तीव्रता से कार्य करेंगे। इसके लिए हम दैनिक जीवन के छोटे कार्यों को सफलतापूर्वक अंजाम दें, जो हमारे विश्वास को पुष्ट करेंगे व स्व-संकेतों को सशक्त बनाएँगे। जितनी हमारी विश्वास की शक्ति सबल होती जाएगी, उतना ही हमारा परमात्मा की ईश्वरीय शक्ति से तादात्म्य स्थापित होता जाएगा और परिणामस्वरूप हमारे स्व-संकेतों में वह बल आता जाएगा कि हम अपने जीवन को एक नई दिशा दे सकें।

अच्छी पुस्तकों का स्वाध्याय स्व-संकेतों को पुष्ट करने में बहुत सहायक सिद्ध होता है। इनसे हमारे विचारों में एक नई धार आती है और जैसे हमारे संकेत होंगे, वैसे ही हमारा अंतर्मन निर्मित होता जाएगा। नित्यप्रति रात्रि में सोने से पूर्व अपना मूल्यांकन अवश्य करें। इसके लिए डायरी का उपयोग भी हम कर सकते हैं। लेखन से संकेत और पुष्ट होते हैं। कल की अपेक्षा आज अधिक उन्नति हमारे संकेतों को क्रमश: बलवती बनाती है, हालाँकि स्व-संकेतों को प्रभावी होने में कुछ समय लग सकता है, लेकिन ये अपने प्रभाव में अमोघ होते हैं और समय के साथ व्यवहार में परिलक्षित होते हैं और व्यक्तित्व नए सिरे से गढ़ना प्रारंभ होता है। निस्संदेह इन सशक्त एवं शुभ स्व-संकेतों के माध्यम से हम अपने व्यक्तित्व का पुनर्निर्माण कर सकते हैं, जीवन का नया विधान लिख सकते हैं। ❑

प्यासा मनुष्य अथाह समुद्र की ओर यह सोचकर दौड़ा कि महासागर से जी भर अपनी प्यास बुझाऊँगा। वह किनारे पहुँचा और अंजलि भरकर जल मुँह में डाला, किंतु तत्काल ही बाहर निकाल दिया।

प्यासा मनुष्य असमंजस में पड़कर सोचने लगा कि सरिता सागर से छोटी है, किंतु उसका पानी मीठा है; जबकि सागर सरिता से बहुत बड़ा है, पर उसका पानी खारा है।

कुछ देर बाद उसे समुद्र पार से आती एक आवाज सुनाई दी—''सरिता जो पाती है, उसका अधिकांश बाँटती रहती है, किंतु सागर सब कुछ अपने में ही भरे रखता है। दूसरों के काम न आने वाले स्वार्थी का सार यों ही निस्सार होकर निष्फल चला जाता है।'' आदमी समुद्र के तट से प्यासा लौटने के साथ एक बहुमूल्य ज्ञान भी लेता गया, जिसने उसकी आत्मा को तृप्त कर दिया।

बोया पेड़ बबूल का, आम कहाँ से होय?

शास्त्रों में कर्मफल विधान का विशद् वर्णन व विवेचन मिलता है। कर्मफल विधान के अनुसार हम जो भी अच्छे-बुरे, शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य आदि कर्म करते हैं, उनका फल हमें अवश्य ही भोगना पड़ता है। यदि हम बुरे कर्म करते हैं तो उनका परिणाम सदा बुरा ही होता है। यदि हम अच्छे कर्म करते हैं तो उनका परिणाम हमेशा अच्छा ही होता है।

अतीत में अथवा पूर्वजन्म में किए गए कर्म ही प्रारब्ध बनकर अच्छे-बुरे फल, परिणाम के रूप में हमारे वर्तमान जीवन में प्रकट होते हैं और हमारे द्वारा वर्तमान समय में किए जा रहे कर्म ही भविष्य में या अगले जन्म में अच्छे-बुरे फल अथवा प्रारब्ध के रूप में प्रकट होते हैं। अस्तु हम आज अच्छी-बुरी जिस किसी भी स्थिति में हैं, वह हमारे द्वारा अतीत में अथवा पूर्वजन्म में किए गए कर्मों का ही परिणाम है।

हम वर्तमान समय में जो भी कर्म कर रहे हैं, उन्हीं के आधार पर हम भविष्य में अथवा अगले जन्म में सुखद या दु:खद स्थिति में होंगे। हमारे सुख-दु:ख का कारण हम स्वयं हैं, दूसरा कोई नहीं। युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी का स्पष्ट मत है कि कर्मफल का सिद्धांत 'बोओ और काटो' के सिद्धांत पर आधारित है। जैसे यदि किसान ने अपने खेत में मक्का, गेहूँ या आम के बीज बोये हैं तो उसके खेत में मक्का, गेहूँ और आम ही उगेंगे और यदि किसान ने अपने खेत में बबूल का बीज बोया है तो उसके खेत में बबूल ही उगेंगे—काँटे ही उगेंगे। जैसा कि कहा गया है—'बोया पेड़ बबूल का, आम कहाँ से होय?'

किसान के खेत की तरह यह संसार भी भगवान का खेत है। भगवान के संसाररूपी इस खेत में जो व्यक्ति शुभ कर्म अथवा पुण्यकर्मों के बीज बोता है तो उसे अपने जीवन में शुभ फल, मधुर फल अथवा सुख ही प्राप्त होता है और बुरे कर्म, अशुभ कर्म, पापकर्म करने पर दु:ख प्राप्त होता है। अत: जब हमें बुरे कर्मों का परिणाम बुरा ही मिलता है तो हम बुरे कर्म करके अपने जीवन में दु:खों को आमंत्रित ही क्यों करें? हम सदा अच्छे, शुभ अथवा पुण्यकर्म ही क्यों न करें? क्योंकि सत्कर्मों से, पुण्यकर्मों से ही हमें अपने जीवन में सुख की प्राप्ति होगी, प्रसन्नता की प्राप्ति होगी।

जब हम कोई बुरे कर्म करते हैं, जैसे कि चोरी, बेईमानी, हत्या, लूट, व्यभिचार, भ्रष्टाचार आदि तो हमारे मन में हमेशा एक अज्ञात भय समाया रहता है। हमें आत्मग्लानि होती है, मानसिक पीड़ा होती है। हम तनाव, अवसाद में रहते हैं। हम धन-दौलत होते हुए भी सुखी नहीं रह पाते; क्योंकि हमारे द्वारा किए गए बुरे कर्मों के कारण हमारे चित्त में, अंत:करण में हाहाकार-सा मचा रहता है—जिससे हम हमेशा परेशान और बेचैन रहते हैं। ऐसे में हमारा सुख-चैन छिन-सा जाता है।

बुरे कर्म करने पर हममें हीन भावना और आत्मग्लानि होती है, जिससे हमें कई प्रकार की मानसिक बीमारियाँ, परेशानियाँ होने लगती हैं। हमारा मान, सम्मान सब कुछ समाप्त हो जाता है। वहीं जब हम कोई पुण्यकर्म करते हैं, शुभ कर्म करते हैं, अच्छे कर्म करते हैं जैसे कि किसी की सहायता करना, किसी की धन से मदद करना, किसी के प्रति सद्भावना रखना आदि तो हमें अपार मानसिक शांति मिलती है, हमें आत्मसंतोष मिलता है। हमें आत्मिक प्रसन्नता प्राप्त होती है। इस तरह के शुभ व पवित्र कर्मों को करने से हमारी चित्तशुद्धि होती है।

ऐसा करने पर समाज में हमें लोग मान व सम्मान देते हैं। हम स्वयं की नजरों में भी ऊँचे उठे हुए होते हैं। कहते हैं कि पहाड़ों से गिरकर तो कोई आदमी फिर भी उठ सकता है, परंतु जो नीच कर्म, बुरे कर्म, पापकर्म आदि कर अपनी स्वयं की नजरों में गिर जाता है, वह कभी उठ नहीं पाता। वह सदा हीनभावना और आत्मग्लानि के बोझ तले दबा रहता है व फिर उसका जीवन भारस्वरूप ही हो जाता है, जिसे वह जीवनभर सिसकते हुए, बिलखते हुए किसी-न-किसी प्रकार ढोता रहता है।

अच्छे कर्म करने वाले लोग जहाँ आत्मसंतोष पाते हैं और सर्वज्ञ, सर्वव्यापी ईश्वर का कृपापात्र बनते हैं तो वहीं बुरे कर्म करने वाले लोग ईश्वर के कृपा-प्रसाद से वंचित ही रहते हैं। अस्तु समझदारी तो इसी में है कि हम सदा शुभ कर्म करें, पुण्यकर्म करें, अच्छे कर्म करें जिससे कि हम मधुर फल प्राप्त कर सकें और हम बुरे कर्मों से, पापकर्मों से बचे रहें, जिससे कि हमें कोई दुःख प्राप्त न हो।

प्रश्न यह उठता है कि हम चाहकर भी बुरे कर्म, पापकर्म करने से स्वयं को क्यों नहीं रोक पाते? हम चाहते तो हैं कि पुण्यकर्म करें, पर हम ऐसा नहीं कर पाते और हम चाहते तो हैं कि हम पापकर्म न करें, परंतु हम फिर भी न जाने क्यों पापकर्मों में लिप्त हो जाते हैं? ऐसा क्यों होता है? ऐसी कौन-सी शक्ति है, जो हमें बुरे कर्मों में जबरन लिप्त करती है? यह सत्य है कि हम न चाहते हुए भी कभी-कभी पापकर्मों में लिप्त हो जाते हैं। हम स्वयं को ऐसा करने से रोकना तो चाहते हैं, पर रोक नहीं पाते। हम जानते हैं कि धर्म क्या है, अधर्म क्या है, पाप क्या है, पुण्य क्या है, परंतु पुण्यकर्म में हमारी प्रवृत्ति नहीं होती और पापकर्म से निवृत्ति नहीं होती। ऐसा क्यों है?

दरअसल जैसे किसी स्थान की भूमि में किसी विशेष प्रकार की फसल के उगने की, बढ़ने की, लहलहाने की संभावना अधिक प्रबल होती है और कहीं कम। किसी भूमि में किसी बीज के पनपने के लिए पर्याप्त उर्वरता है और किसी विशेष फसल के लिए उर्वरता या तो कम है या तो बिलकुल ही नहीं है। जैसे कहीं अंगूर की फसल अच्छी होती है तो कहीं बिलकुल नहीं। कहीं उपयुक्त जलवायु के कारण सेब की फसल अधिक होती है तो अनुपयुक्त जलवायु के कारण कहीं बिलकुल भी नहीं होती। उसी प्रकार यदि हमारी चित्तभूमि में बुरे कर्मों का संस्कार है, प्रभाव है तो उसके प्रभाव में आकर व्यक्ति बुरे कर्मों में, पापकर्मों में शीघ्र ही लिप्त हो जाता है। उसके संकल्पबल, आत्मबल बड़े ही कमजोर होते हैं, जिनसे कि वह बुरे कर्म करने से स्वयं को रोक नहीं पाता।

वहीं जिस व्यक्ति की चित्तभूमि में पूर्व में किए गए पुण्यकर्मों का संस्कार है तो उस अच्छे संस्कार से प्रेरित, प्रभावित होकर व्यक्ति पुण्यकर्मों में सहज ही प्रवृत्त हो जाता है। वह धर्म-कर्म में शीघ्र ही प्रवृत्त हो जाता है। वह परोपकार में सहज ही प्रवृत्त हो जाता है। अतः जैसे किसान बीज बोने से पूर्व अपने खेत की मिट्टी को उर्वर करता है, विविध प्रकार की खाद का इस्तेमाल करता है; उसकी भली प्रकार जुताई करता है, सिंचाई करता है—उसी प्रकार हम निरंतर जप, तप, ध्यान, भक्ति, स्वाध्याय आदि के द्वारा अपनी चित्तभूमि में पूर्व से निहित बुरे संस्कारों को सदा के लिए समाप्त कर उसे उर्वर बना सकते हैं।

बुरे संस्कारों का प्रभाव समाप्त होते ही हममें नूतन संकल्प, आत्मबल उभर आएँगे। हममें पुण्यकर्म करने की सहज प्रवृत्ति पनपने लग जाएगी। तब हमारे अंतस् में स्वभावतः ही पुण्यकर्म करने की सहज प्रवृत्ति पनपने लग जाएगी। तब हम स्वभावतः ही पुण्यकर्म, धर्मकर्म की ओर प्रवृत्त होने लगेंगे। तब हम सचमुच सदा आनंदित और प्रफुल्लित रह सकेंगे और जीवन को भली भाँति जीते हुए जीवन के परम लक्ष्य को भी प्राप्त कर सकेंगे। ❑

विलंब की सूचना

कोविड-19 महामारी के कारण मार्च, 2020 से संपूर्ण भारतवर्ष में लॉकडाउन रहा, ट्रेनें अभी तक नहीं चल पा रही हैं। सर्वविदित है कि डाक का प्रेषण रेल डाकसेवा के माध्यम से होता है। डाकसेवा बाधित चल रही है—छोटे-मोटे पत्र/पैकिट सड़क मार्ग से जिस-तिस प्रकार पहुँच रहे हैं। अब डाक विभाग आंशिक रूप से जिस-तिस प्रकार डाक वितरण का कार्य प्रारंभ कर पा रहा है। आगे भी आपकी प्रिय अखण्ड ज्योति/युगनिर्माण योजना/गुजराती युगशक्ति गायत्री/प्रज्ञा अभियान कब तक मिलें, कुछ कहा नहीं जा सकता।

हम लोग भरसक प्रयास कर रहे हैं कि पत्रिकाएँ समय से पहुँचें। विवशता के लिए हमें भी खेद है। आशा है परिवार के सदस्य अन्यथा न लेंगे।

मर्यादापुरुषोत्तम राम
एक ज्योतिषीय परिक्रमा

मर्यादापुरुषोत्तम राम का जीवन संपूर्ण मानवता के लिए एक प्रेरणास्रोत के रूप में है। उनके जीवन के लीलाप्रसंग से अनेकों अपने जीवन को सँवारते दिखाई पड़ते हैं। इसी क्रम में उनकी कुंडली का अध्ययन भी एक प्रेरणा का माध्यम बन जाता है।

प्रथम भवन—दशरथनंदन श्रीराम की जन्मकुंडली में चंद्रदेव स्वक्षेत्री होकर कर्क लग्न में, उच्च राशिगत देवगुरु बृहस्पति के साथ विराजमान होकर कह रहे हैं कि यह जातक तन-मन से विलक्षण प्रतिभासंपन्न होकर सुदर्शनीय तो होगा ही, साथ ही शील गुण, स्वभाव, कार्यकुशलता की दृष्टि से एक ऐसे विराट व्यक्तित्व का धनी होगा, जिसे विश्व मानव समाज श्रद्धामयी दृष्ट से अपलक निहारता हुआ राममय हो जाएगा।

द्वितीय भवन—भरताग्रज श्रीराम की कुंडली के द्वितीय भवन का स्वामी नवग्रहों का राजा सूर्य विराजमान है राज्य भवन में। सूर्यकुल-भूषण श्रीराम इक्ष्वाकु वंश की महानता को कल-कल करती गंगा की तरह सदैव यशस्वी बनाए रखेंगे। ज्योतिषीय ग्रंथों में द्वितीय भवन से जातक के नाक, कान, नेत्र, मुख, दंत, कंठ स्वर, सौंदर्य, प्रेम आदि से जातक के व्यक्तित्व को देखा जाता है।

भगवान श्रीराम सौंदर्य की अद्भुत प्रतिमा थे तथा उन्होंने तीनों माताओं के प्रति श्रद्धा, भाइयों के प्रति अगाध स्नेह, सुमंत से लेकर समस्त अयोध्यावासियों के प्रति कर्त्तव्यपरायणता, सुग्रीव, विभीषण आदि अनगिनत मित्रों के प्रति चिरस्मरणीय स्नेहमूर्ति तथा भार्या जनकनंदिनी सीता जी के प्रति अलौकिक प्रीति के कारण ही लंकापति रावण से युद्ध की अनिवार्यता स्वीकारी थी।

तृतीय भवन—पवनपुत्र हनुमान जी के इष्ट प्रभु श्रीराम की कुंडली के तृतीय भवन में कन्या राशिगत स्वक्षेत्री राहु विराजमान हैं। तृतीय भवन बंधु, पराक्रम, शौर्य, योगाभ्यास, साहस आदि की मीमांसा का भवन है। भगवान श्रीराम का शौर्य, पराक्रम तो राम-रावण के भीषण युद्ध में परिलक्षित होकर सदैव अविस्मरणीय रहेगा। भ्रातृत्व प्रेम में तो प्रभु श्रीराम का भरत प्रेम समस्त प्रेमों की ज्ञानगंगा है।

चतुर्थ भवन—कौशल्यानंदन श्रीराम की जन्मकुंडली के चतुर्थ भवन में तुला राशि में उच्च राशिगत शनिदेव विराजमान हैं। ज्योतिष ग्रंथों में चतुर्थ भवन से व्यक्ति के अंतःकरण, सुख, शांति, भूमि, भवन, बाग-बगीचा, निधि, दया, औदार्य, परोपकार, मातृ सुख आदि का निरूपण जातक की जीवनशैली में देखा जा सकता है।

प्रभु श्रीराम की कुंडली का चतुर्थेश शुक्र, भाग्य भवन में अपनी उच्च राशि मीन में विराजमान है। उच्च राशिगत शनि प्रभु श्रीराम से मर्यादित जीवन के प्रति आग्रहशील हैं। भूमि, भवन का सुख तो चक्रवर्ती राजा के लिए सहज सुलभ है। अंतःकरण की दृष्टि से सर्वत्र प्रेम का अनुग्रह तथा दया और औदार्यता महर्षि गौतम की पत्नी अहल्या को शापमुक्त कर पाषाण से नारी रूप प्रदान करना तथा शबरी के जूठे बेर खाना—उनकी उदारता का सुखद पक्ष है। मातृत्रय कैकेयी, कौशल्या, सुमित्रा के प्रति मातृभक्ति सदैव स्तुत्य एवं प्रेरणास्पद रहेगी।

पंचम भवन—लव-कुश के पिता प्रभु श्रीराम की जन्मकुंडली में पंचम भवन में वृश्चिक राशि है। वृश्चिक राशि का स्वामी मंगल सप्तम भवन में उच्च राशि में (मकर में) विराजमान है। पंचम भवन से जातक की संतान, हाथ का यश, बुद्धिचातुर्य, विवेकशीलता, सौजन्य तथा परीक्षा में यशप्राप्ति जुड़ी है। लव-कुश के रूप में महान प्रतापी पुत्र तथा स्थावर संपत्ति के रूप में अयोध्या का चक्रवर्ती साम्राज्य एवं अपनी बुद्धि-विवेक के बल पर सीता की खोज में सुग्रीव से मित्रता, लंका विजय में लंकापति रावण के अनुज विभीषण का युद्ध के पूर्व लंकापति बनाने के लिए राजतिलक करना तथा मर्यादा में रहते हुए खर-दूषण, कुंभकरण, लंकापति रावण से लेकर अनेक आततायी असुरों का वध कर रामराज्य की स्थापना करना, बुद्धिचातुर्य की रहस्यमयी परिणति के सिवाय और क्या है ?

षष्ठम् भवन—श्रीराम की जन्मकुंडली षष्ठम् भवन धनु राशि में अवस्थित है। षष्ठम् भवन रोग, शत्रुओं से जातक की कथा-व्यथा का संकेत देता है। यह भाव शत्रु कष्ट के अभाव से जुड़े प्रश्नों की रहस्यमयता को उजागर करता है। प्रभु श्रीराम की कुंडली का षष्ठेश धनु राशि के स्वामी देवगुरु वृहस्पति लग्न भवन में कर्क राशिगत चंद्रमा के साथ अपनी उच्च राशि (कर्क) में विराजमान होकर 'गजकेसरी योग' बना रहे हैं; जिसका सामान्य भाषा में अर्थ है—वनराज सिंह हाथियों को अपनी एक हुंकार (गर्जना) में भगा देता है।

गज यानी हाथी, केशरी यानी सिंह। गुरु विश्वामित्र से शस्त्र विद्या में अनेक रहस्यमयी अलौकिक विधाओं का ज्ञान प्राप्त किया, जिसका सर्वप्रथम प्रयोग ताड़का और सुबाहु के वध के रूप में घटित हुआ। श्रीरामचंद्र जी ने जहाँ-जहाँ अपने पग रखे, वहाँ उन्हें यश मिला। शत्रुविजय, सीता स्वयंवर से लेकर खर-दूषण तथा वानरराज बालि तथा दशानन रावण तक अनेक शक्तिशाली अपराजेय योद्धाओं का वध उन्होंने किया।

सप्तम भवन—सीतापति रघुनंदन श्रीराम की जन्म-कुंडली के सप्तम भवन में मकर राशि में उच्च राशिगत भूमिपुत्र मंगल विराजमान हैं। सप्तमस्थ मंगल होने से श्रीराम की कुंडली मंगली बन गई। मंगल पंचमेश और राज्येश है। गजकेसरी योग की सप्तम दृष्टि दांपत्य जीवन को भी प्रभावित कर रही है। जनकनंदिनी सीता जी से उनका विवाह धनुषभंजन के बाद हुआ, किंतु भूमिपुत्र मंगल उच्चासीन होकर कह रहे हैं—जातक को दांपत्य जीवन का सुख तो दूँगा, किंतु अल्पकालीन।

सप्तम भवन से पारिवारिक झगड़े तथा भूत, भविष्य, वर्तमान की स्थिति का सिंहावलोकन भी किया जाता है। मंथरा की षड्यंत्रकारी योजना ने कैकेयी की मति भ्रष्ट की। परिणतीवश श्रीराम को वनगमन, सीताहरण, आसुरी शक्तियों का विनाश, लंका विजय के पश्चात अयोध्या में राजतिलक, वैदेही सीता का त्याग, ऋषि वाल्मीकि के आश्रम में श्री सीताराम के पुत्रों लव-कुश का जन्म, जनकनंदिनी सीता का भूमि प्रवेश—ये सब मिले। ये सारे कथानक सप्तमस्थ उच्च राशिगत मंगल की चेष्टाओं का फल हैं।

अष्टम भवन—श्रीराम जी की कुंडली में अष्टम भवन में कुंभ राशि का स्वामी शनि चतुर्थ भवन में अपनी उच्च राशि तुला में विराजमान है।

अष्टमेश शनि जातक की दीर्घायु का परिचायक है, किंतु सप्तमेश और अष्टमेश शनि बलवान स्थिति में होकर जातक को दीर्घायु तो देता है, परंतु साथ ही दांपत्य जीवन में अशुभता भी लाता है। इसके साथ ही मृत्यु स्थान भी यह निर्धारित करता है। अष्टमेश शनि चतुर्थ भवन में होने से पारिवारिक विवाद के कारण भगवान राम के वनगमन से सुख की हानि हुई, किंतु वहीं असुरों का विनाश कर यश मिला। रणरिपु अर्थात युद्ध-क्षेत्रों में शत्रुओं का दमन भी उन्होंने किया। इसी ग्रहयोग के कारण पृथ्वी से प्रस्थान के बाद चिरकाल तक यशोगाथा अनेक प्रतीकों में बनी रहेगी। यह भी उनके अष्टमेश उच्च राशिगत न्याय के देवता शनि की महिमा का फल है।

नवम भवन—भाग्य भवनस्थ शुक्र श्री राघव की कुंडली का भाग्य भवन कम चमत्कारी नहीं है। भाग्य भवन का स्वामी नवमेश गुरु अपनी उच्च राशि कर्क में चंद्रदेव की युति के साथ लग्नस्थ है। भाग्येश गुरु गजकेशरी योग बना रहा है, लग्न भवन में। भाग्य भवन में उच्च राशिगत शुक्र चतुर्थेश तथा द्वादशेश का स्वामी है। माता से लेकर भूमि, भवन, वाहन (रथ) आदि सभी सुखों से पूरित रहे, किंतु अपनी सप्तम दृष्टि से पराक्रम भवन को निहारते शुक्र ने पराक्रम के प्रदर्शन का माध्यम नारी जाति को बनाया।

शुक्र संबंधों एवं संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने वाला ग्रह है। महर्षि गौतम की पत्नी अहल्या की मुक्ति, रावण से युद्ध में विजयश्री प्राप्त कर अशोक वाटिका से जनकनंदिनी सीता जी की मुक्ति, बालि वध से सुग्रीव की पत्नी रोमा की मुक्ति, श्रीराम की यशोगाथा का एक पक्ष है। दूसरी ओर उन्होंने आसुरी शक्तियों का नाश कर ऋषियों तथा जन-जन को निर्भय जीवन दिया, यह प्रभु श्रीराम के भाग्य भवन का पुण्यप्रताप ही तो था।

दशम भवन—रघुनंदन श्रीराम की कुंडली के दशम भाव अर्थात राज्य भवन में सूर्य के साथ बुध की युति, बुध आदित्य योग तो बना ही रहा है, किंतु बुध व्ययेश होने से राजतिलक होते-होते 14वर्षीय वनवास का योग बन गया। व्ययेश जिस भवन में विराजमान होता, उसे किंचित समान की हानि तो देता ही है। बुध ने ही उन्हें पिता के सुख से वंचित किया, किंतु सूर्य ने उच्च राशिगत होकर राजभवन में विराजमान होने से गौरव, ऐश्वर्य एवं नेतृत्व का स्वामी बनाया।

पिता की आज्ञा से वे वन को गए एवं पिता का मान बढ़ाया। आसुरी शक्तियों के विनाश के लिए वानर जाति की सेना का नेतृत्व कर विजयश्री प्राप्त की। अधिकारप्राप्ति के रूप में सम्राट बने अयोध्या के। ईश्वरप्राप्ति भी दशम भवन से देखी जाती है तो जो स्वयं त्रिभुवनपति हो उसे अपनी भक्ति में लगाकर मोक्ष प्रदान करने में बुध का योगदान महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि द्वादश भवन मोक्ष का भवन भी है। अपनी भक्ति से अनेक साधु, संतों, भक्तों तथा पापियों को भी मोक्षगामी बनाने की प्रेरणा भगवान राम ने सदा दी।

प्रभुता भी दशम भवन का एक गुण है तो श्रीराम प्रभुता पाकर भी दीनों के प्रति भी सदैव सहृदय बने रहे—यही उनकी अनुग्रहमयी प्रभुता है। चतुर्थ भवन में उच्च राशिगत शनि की सप्तम दृष्टि नीची राशि पर होने के कारण ही उन्हें वनवास में 14 वर्षीय वनवासी जीवन बिताना पड़ा। भले ही प्रकृति की रहस्यमयता आसुरी शक्तियों के विनाश के रूप में रूपांतरित हो गई हो, किंतु मंगल की चतुर्थ स्वक्षेत्री दृष्टि और सूर्य के उच्च राशिगत प्रभाव से वनवास की समाप्ति के पश्चात पुनः राज्यारोहण ग्रहों की अपनी रहस्यमयी कलात्मक शक्तियों की ओजस्वीयता तो स्वीकारी ही जाएगी।

एकादश भवन—एकादश भवन मूलतः लाभ, संपन्नता, वाहन, वैभव, स्वतंत्र चिंतन के रूप में ज्योतिषीय ग्रंथों में स्वीकारा गया है। जन-जन के प्रभु श्रीराम स्वतंत्र चिंतक के रूप में नैसर्गिक अर्थात प्राकृतिक संपदाओं से मुक्ति का बोध कराते हैं।

भक्तवत्सल प्रभु श्रीराम का मानव से लेकर समस्त जीवों के प्रति उदार भाव तो था ही, किंतु एकादशेश शुक्र के भाग्य भवन में अपनी उच्च राशि मीन में विराजने से सभी के प्रति करुणा भाव बनाए रखने के प्रति वे संकल्पित रहे। अवतारी होने के बाद भी अपनी मानवीय मर्यादा में बने रहे। एकपत्नी व्रतधारी होने से उन्होंने संपूर्ण नारी समाज को गरिमा प्रदान की। मित्रों को सहोदर की तरह मान दिया। शत्रुओं के प्रति भी मानवीय मूल्यों का क्षरण उन्होंने नहीं स्वीकारा। वचनबद्धता राघव की निष्ठा का अमोघ शस्त्र रही।

द्वादश भवन—सीतापति राघव की कुंडली के बारहवें भवन में मिथुन राशि की स्थापना ने मर्यादापुरुषोत्तम राम की कथनी-करनी में कहीं भी अवरोध पैदा नहीं होने दिया। द्वादश भवन से ज्ञान, शांति, विवेक, संन्यास, शत्रु की रोक तथा धन-सुख समान का व्यय आदि का लेखा-जोखा देखा जाता है।

द्वादश भवन में मिथुन राशि होने से सीतापति राघव भावुक थे। वैदेहीहरण एवं लक्ष्मण को शक्ति लगने पर वे कैसे व्यथित हुए, यह तुलसीकृत रामायण में रोमांचकारी शब्दशैली में अंकित है। दशरथनंदन राम की यह कुंडली असाधारण है। यह कुंडली ही उन्हें श्रेष्ठतम पद को प्रदान करती है। उनके सतत सत्कर्म उनको श्रेष्ठता प्रदान करते हैं, जो ग्रहों के रूप में भी अनुकूल बनते हैं। ज्योतिष का आधार है कर्म। भगवान श्रीराम के कर्म अत्यंत श्रेष्ठ थे, इसलिए हमें भी सत्कर्म करना चाहिए। ❑

किसी मनुष्य ने पूछा—"मनुष्य शक्तियों का भंडार है, फिर वह डूबता-गिरता क्यों है?" गुरु ने इसके उत्तर में अपना कमंडलु पानी में फेंक दिया और दिखाया कि वह ठीक प्रकार तैर रहा है। दोबारा उसे लिया और तली में छेद करके फेंका तो वह डूब गया। गुरु ने बताया—"असंयम के छेद हो जाने से दुर्गुण घुस पड़ते हैं और मनुष्य को डुबा देते हैं। गाय का दूध यदि छलनी में दुहा जाए तो वह जमीन पर गिरेगा, गंदगी उत्पन्न करेगा। गाय पालने का लाभ न मिलेगा। लाभ तभी है, जब दुहने का पात्र बिना छेद का हो। इंद्रियशक्ति-मानसिकशक्ति को यदि कुमार्ग के छेदों से बहने दिया जाए तो मनुष्य की क्षमता इसी प्रकार समाप्त होकर रहेगी।"

आरामपसंदगी बना रही है हमें बीमार

बहुत सुख-सुविधाएँ भी हमारे स्वास्थ्य के लिए नुकसानदायक हो सकती हैं, जबकि वहीं कम सुख-सुविधाएँ स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में सहायक भी हो सकती हैं। यही बात विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक सर्वे की रिपोर्ट कुछ इस तरह से कहती है कि पूरी दुनिया में आरामपसंदगी यों पसरी हुई है कि वह हमारी सेहत पर भारी पड़ने लगी है और इस पर चिंता इस बात की है कि इस मामले में भारतीय बहुत आगे हैं।

वर्तमान युग मशीनीकरण का है, पहले हर कार्य के लिए हाथों का इस्तेमाल किया जाता था, जिसमें मेहनत लगती थी, पसीना बहता था। काम तो अब भी वही किया जाता है, लेकिन अब उसमें मेहनत कम लगती है, समय कम लगता है और पसीना भी कम बहता है। काम करने के ये तरीके भले ही हमारी सुविधा के लिए उपयुक्त हों और इनके माध्यम से कम समय में हमारा बहुत सारा कार्य हो जाता हो, लेकिन इनका दुष्प्रभाव यह है कि इनके कारण व्यक्ति का स्वास्थ्य बुरी तरह से प्रभावित हो रहा है।

पहले घर के हर कार्य घर की महिलाओं द्वारा हाथों से किए जाते थे, जैसे—आटा पीसना, मसाले पीसना, अनाज साफ करना, कपड़े धोना, खाना बनाना इत्यादि। जैसे—पहले घर-घर में सिलबट्टा व पत्थर की चक्की होती थी, जिनसे चटनी, मसाले व आटा इत्यादि पीस लिए जाते थे, लेकिन आज के समय में आटा व मसाले या तो चक्की में पिसाए जाते हैं या फिर इन्हें बना-बनाया ही खरीद लिया जाता है। इसके साथ ही चटनी आदि के लिए मिक्सी का प्रयोग किया जाता है, जिससे रसोई का कार्य बहुत शीघ्र होता है और समय की भी बचत होती है, परंतु इससे मेहनत करने की आदत चली जाती है।

पहले अनाज जैसे—चावल-दाल साफ करने का कार्य अपने हाथों से किया जाता था, लेकिन आजकल साफ चावल-दाल बाजार में उपलब्ध होते हैं, जिन्हें लोग आसानी से खरीद लेते हैं। पहले लोग अपने कपड़े हाथों से धोते थे, लेकिन आज या तो कपड़े मशीन में धोए जाते हैं या फिर उन्हें धोने व प्रेस करने के लिए लॉण्ड्री में कपड़े धोने वालों को दे दिया जाता है।

पहले लोग या तो पैदल या फिर साइकिल से कहीं आते-जाते थे, बहुत कम ही मोटरगाड़ियों का इस्तेमाल होता था, लेकिन आज कहीं भी आने-जाने के लिए बाइक, ऑटो, कार, ट्रेन व प्लेन आदि का बहुत इस्तेमाल होता है; क्योंकि इनके माध्यम से कई किलोमीटर की दूरियाँ भी आसानी से कम समय में तय कर ली जाती हैं।

पहले किसी भी संदेश को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाने में बहुत समय लग जाता था, लेकिन आजकल कोई भी संदेश मात्र कुछ सेकंडों में ही एक स्थान से दूसरे स्थान या एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक सरलता से पहुँच जाता है।

इस तरह पहले के समय में और आज के समय में जमीन-आसमान का अंतर है, लेकिन इतनी सुविधाओं के रहते हुए भी हमारे स्वास्थ्य में वृद्धि होने के बजाय, स्वास्थ्य की दृष्टि से लगातार गिरावट ही देखने को मिल रही है।

आज हमारे जीवन में सक्रियता भले हो, लेकिन आरामपसंदगी भी बहुत है। मनोचिकित्सकों का यह कहना है कि सक्रियता का केवल यह मतलब नहीं कि आप बस, दिमागी तौर पर लगातार सक्रिय रहें। सक्रियता वही फलदायी है, जो आपको पसंद हो, सुख देती हो। अच्छी सेहत के लिए पहली शर्त यह है कि हम अपने लिए ऐसी दिनचर्या निर्धारित करें, जिससे हमें अपने जीवन में लगातार मिलने वाले तनाव से थोड़ा छुटकारा मिले अन्यथा हमारी जीवनशैली ही हमें बीमारियों का तोहफा देगी।

अच्छी सेहत के लिए हमें पौष्टिक भोजन, व्यायाम, शारीरिक व मानसिक श्रम, आराम आदि जरूरी हैं, लेकिन इसके साथ-साथ हमारे परिवेश में स्वच्छता व साफ-सफाई भी जरूरी हैं और इसके लिए हमें स्वयं पहल करनी होगी; क्योंकि बीमारियाँ स्वयं नहीं आतीं, बल्कि हम उन्हें आने का अवसर देते हैं और ऐसी परिस्थितियाँ

निर्मित करते हैं, कि उन्हें आने का आमंत्रण मिल सके। इसलिए बीमारियों के पनपने के जो भी कारण हैं, उन्हें हमें स्वयं दूर करना होगा और इसके लिए उचित प्रयास भी करने होंगे।

आज लोगों की जिंदगी इतनी तेजी से आगे बढ़ रही है कि इसके साथ कदम-से-कदम मिलाने के लिए मशीन से काम लेना हमारी मजबूरी बन चुकी है। हम इसे पूरी तरह से आरामपसंदगी नहीं कह सकते; क्योंकि इसमें हमारी मरजी नहीं चलती, लेकिन फिर भी हमने अपने जीवन में जो कृत्रिमता अपनायी है, वह हमारे लिए बिलकुल भी फायदेमंद नहीं है, जैसे ताजी हवा का सेवन करने के बजाय घरों में ए.सी. में रहने की आदत डालना, घर में हरियाली बढ़ाने के बजाय प्लास्टिक के फूलों व पौधों से घर की सजावट आदि करने से हमें वो लाभ नहीं मिलता, जो प्रकृति के सान्निध्य में मिलता है।

हमारे जीवन में सुख-सुविधाएँ बढ़ी हैं तो हमारे मन का स्वाभाविक शत्रु आलस्य और भी तेजी से फला-फूला है। इस सबके कारण स्थिति यह है कि आज 135 करोड़ की आबादी में 42 करोड़ लोग इसकी चपेट में आकर बीमार हो रहे हैं। हाल ही में विश्व स्वास्थ्य संगठन के एक सर्वे के अनुसार—काम करने में आलस्य करने और पर्याप्त श्रम न करने के कारण हम भारतीय लोग डायबिटीज यानी मधुमेह के मामले में पहले नंबर पर और बच्चों के मोटापे के मामले में दूसरे नंबर पर आ गए हैं। इसके बावजूद कि लोगों को फिट होने का ऐसा चस्का चढ़ा है कि घर-घर में ट्रेडमिल (एक ही स्थान पर दौड़ने के लिए मशीन) आ गए हैं, लेकिन तब भी डायबिटीज, थायरॉयड, एसिडिटी या फिर पथरी समेत ऐसी कई बीमारियाँ आज हर घर की मेहमान बनती जा रही हैं।

सेहत के मामले में महिलाओं की स्थिति पुरुषों से भी कमजोर है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की हाल में ही हुई एक रिसर्च के अनुसार—भारतीय महिलाएँ भारतीय पुरुषों से कम वॉक करती हैं, यानी कम पैदल चलती हैं। आँकड़ों के मुताबिक महिलाएँ दिनभर में लभगग 3,684 कदम चलती हैं; जबकि पुरुष लगभ 4,606 कदम चलते हैं। जबकि विश्व स्वास्थ्य संगठन रोजाना पाँच मील यानी दस हजार कदम चलना जरूरी बताता है, लेकिन आधुनिक जीवनशैली में यह सबके बस की बात नहीं है। खासतौर से उन लोगों के लिए यह बिलकुल संभव नहीं है, जो दिनभर दफ्तर में बैठकर काम करते हैं।

चिकित्सकों के अनुसार—इस बारे में डरने के बजाय थोड़ा सजग होने की जरूरत है; क्योंकि जब आप अपनी पसंद का खाना खाते हैं तो आपको कैलोरी को बर्न करने की अर्थात अनावश्यक ऊर्जा का क्षरण करने की आदत भी डालनी होगी और इसके लिए कार पर कहीं जाने की आदत छोड़कर साइकिल या पैदल चलने का रास्ता चुनना बेहतर होगा।

हमें यह याद रखना चाहिए कि जीवनशैली से जुड़ी बीमारियों में काफी हद तक मन का भी हाथ है। यदि हम फिट रहने की कोशिश करते हैं और तनाव भी ले रहे हैं, तो हमारे द्वारा की जाने वाली एक्सरसाइज या अच्छी खुराक आदि को हमारा शरीर सहजता से स्वीकार नहीं कर पाता। तनाव में व्यक्ति अक्सर गलत आदतों यानी नशे आदि की तरफ चला जाता है और इससे बीमारियों को हमारे जीवन में प्रवेश करने का मार्ग मिल जाता है। इसलिए हमें सचेत रहने की जरूरत है, आज के समय में यदि हमें स्वस्थ रहना है तो हमें समय के साथ संतुलन बनाने की जरूरत है। इसके लिए अपने कार्यों के बीच में ही थोड़ा आसन, व्यायाम, प्राणायाम आदि करना जरूरी है, ये सब हमारी सेहत को अच्छा बनाए रखने में सहायक हैं।

हम क्या करते हैं, इसका महत्त्व कम है,
किंतु हम किस भाव से करते हैं,
इसका बहुत महत्त्व है।

देखा जाए तो हमारे शरीर में पहले से ही एक व्यवस्था मौजूद है, जिसे हम जैविक घड़ी कह सकते हैं, लेकिन हम उस व्यवस्था को खारिज करके उस पर अपनी मरजी थोपने के आदी हो चुके हैं और यहीं से शुरुआत होती है—हमारी अधिकांश बीमारियों की। सच्चाई यह है कि आज हम शरीर की जैविक घड़ी के बजाय सोने-जागने, खाने-पीने के तरीके खुद ही तय करते हैं। स्वस्थ रहने के लिए यदि हम केवल अपने शरीर की जैविक घड़ी के अनुसार अपनी दिनचर्या तय करें और उसके अनुसार कार्य करें तो भी हम पहले से भी ज्यादा स्वस्थ रह सकते हैं। ❑

सीखने की कोई उम्र नहीं

कहा जाता है कि सीखने की कोई उम्र नहीं होती। सीखने का यही गुण व्यक्ति को एक अच्छा शिष्य बनाता है, जिसके कारण वह अनवरत अपने जीवन में सीखता रहता है। जिसने अपने जीवन में सीखना बंद कर दिया, उसने अपने जीवन में आगे बढ़ना भी बंद कर दिया। सीखना बंद करने के साथ ही व्यक्ति अपने प्रगति के सोपानों से भी मुँह मोड़ लेता है, फिर वह वहीं ठहर जाता है। जो व्यक्ति सदैव सीखता रहता है और अपनी कार्यकुशलता बढ़ाता रहता है, वह अपने लिए एक ऐसी स्थिति का निर्माण करता है, जहाँ सफलता स्वयं उसके पास चलकर आती है और ऐसा व्यक्ति ही अन्य अनेक लोगों और अपनी आने वाली पीढ़ियों के लिए एक आदर्श बन जाता है, अनुकरणीय बन जाता है।

हमारा देश भारत स्वयं एक ऐसा देश है, जहाँ सदियों से ज्ञान प्राप्त करने और सीखने की परंपरा को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है। यहाँ गुरु को गोविंद से भी ऊँचा स्थान दिया गया है और यह इस बात का प्रमाण है कि संपूर्ण ज्ञान जिनकी श्वासों से प्रकट होता है, वह ईश्वर भी जब मानव रूप में धरती पर आते हैं, तो उन्हें भी ज्ञानार्जन के लिए गुरु के पास जाना पड़ता है। इस बात को गोस्वामी तुलसीदास जी भगवान राम के विद्याध्ययन के प्रसंग पर इस प्रकार कहते हैं—

जाकी सहज स्वास श्रुति चारी।
सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी॥

इसी तरह भगवान श्रीकृष्ण, जिन्होंने ब्रज में बाललीला के दौरान बड़े-से-बड़े असुरों का संहार किया, देवराज इंद्र को चुनौती देकर उँगली पर गोवर्धन पर्वत को उठाया, मथुरा में सर्वाधिक शक्तिशाली महाराज कंस का वध किया, फिर भी उन्हें विद्याध्ययन हेतु गुरु संदीपनि के आश्रम उज्जैन भेज दिया गया। यही हमारे देश के चिंतन का अद्वितीय सौंदर्य है, जो अपने आरोही स्वर में यह कहता है कि बड़प्पन चाहे आयु का हो या स्थिति का, सीखना तो सदैव 'वरेण्य' है अर्थात वरण करने योग्य है, अपनाने योग्य है।

सदैव सीखते रहने का यह मंत्र हमारे चिंतन के उस सूत्र से भी प्रेरित है, जो यह कहता है—चरैवेति-चरैवेति। अर्थात रुकना नहीं, बल्कि चलते रहना है; अनवरत चलते रहने का यह सूत्र गहन अर्थ को अपने में समेटे हुए है। इसका तात्पर्य है कि भौतिकता की चकाचौंध में तथा सांसारिक मायाजाल में व्यक्ति को कहीं अटकना नहीं है, बल्कि निरंतर इससे आगे बढ़ते रहना है; यहाँ चलते रहने का तात्पर्य केवल आगे बढ़ने के लिए ही नहीं है, बल्कि ऊपर उठने के लिए भी है; क्योंकि यही ऊर्ध्वगामी गति हमें उस लक्ष्य तक ले जाती है, जिसे हम परम लक्ष्य कहते हैं।

इस संदर्भ में घटना उस समय की है, जब महाभारत युद्ध समाप्त हो चुका था और भीष्म पितामह सूर्य के उत्तरायण होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। ऐसे समय में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर से कहते हैं कि वे अपने वृद्ध पितामह से ज्ञान प्राप्त करें। युधिष्ठिर आयु के जिस पड़ाव पर थे और जीवन के संघर्ष ने उन्हें जो सिखाया था, उसके बाद भी कुछ सीखने के लिए मृत्यु के लिए प्रतीक्षारत पितामह भीष्म के पास जाने का आग्रह उन्हें कुछ विचित्र-सा लगा। फिर भी वे ज्ञान प्राप्त करने के लिए भीष्म पितामह के पास गए और इसी कारण महाभारत के शांति और अनुशासन पर्व का संवाद एक अद्भुत रूप में पाठकों के सामने आया।

निरंतर सीखने की कला व्यक्ति को जीवन में निश्चित रूप से आगे बढ़ाती है। सफल लोगों की गिनती में शामिल एक सॉफ्टवेयर डेवलप करने वाले व्यक्ति के साथ काम करने वाले उनके कई साथी अब काम करना बंद कर चुके हैं। इस बारे में सॉफ्टवेयर डेवलपर का कहना है कि—उनके साथियों ने काम करना बंद नहीं किया, बल्कि उन्हें काम मिलना बंद हो गया है। उन्हें भी काम मिलना बंद हो गया होता, यदि उन्होंने अपने समय का एक हिस्सा कुछ नया सीखने में न लगाया होता; क्योंकि यह प्रकृति का नियम है कि आप तभी तक चलेंगे, जब तक आप सीखेंगे।

सीखने का क्रम अपनाए रखना केवल शिष्यवृत्ति का ही द्योतक नहीं है, बल्कि उत्कर्ष पर पहुँचकर सिद्धि के

क्षणों में अहंकार को पास न आने देने का कवच भी है। आज कंप्यूटर से लेकर अध्यात्म तक, चिकित्सा से लेकर प्रार्थना तक, भौतिकता से लेकर परमार्थ तक और विज्ञान से लेकर परमज्ञान तक के प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ने की जो भूमिका है, वह निरंतर सीखने की धरा पर ही अवस्थित है; क्योंकि जिसने सीखना बंद कर दिया है, वह एक तरह से ठहर गया है और जड़ता की ओर बढ़ रहा है।

वेद अध्ययन के बाद गुरु के द्वारा शिष्य को दिया जाने वाला एक दीक्षा उपदेश बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। एक तरह से यह उपदेश समस्त शिक्षाओं का सार है और वह है—**स्वाध्याय न प्रमदितव्यम्**। यह उपदेश तैत्तिरीय उपनिषद् के एकादश अनुवाक से उद्धृत है। दीक्षा के अवसर पर गुरु, शिष्य से अध्ययन पूर्ण होने के बाद भी इस उपदेश के माध्यम से यह कहता है कि कभी पढ़ने में आलस्य मत करना। देखा जाए तो पढ़ाई के उपरांत गुरु के द्वारा शिष्य को ऐसा कहना कुछ विचित्र-सा लग सकता है।

यह इसलिए कहा गया है; क्योंकि हजारों वर्ष पूर्व भी हमारे ऋषि-मुनि यह जानते थे कि जो सीखा गया, उसे एक निरंतरता ही सार्थकता दे सकती है और यहाँ गुरु केवल यह कहकर ही विराम नहीं लेते, बल्कि यह भी कहते हैं कि **कुशलात् न प्रमदितव्यम्**। अर्थात कुशलता प्राप्त करने में भी कभी आलस्य मत करना। वास्तव में दीक्षा के उपदेश के ये दोनों सूत्र एक सफल जीवन जीने के सूत्र हैं। अब तो इन दोनों सूत्रों को दीक्षारंभ में भी शामिल कर लिया गया है, ताकि शिष्यगण आरंभ से ही इन उपदेशों को अपने जीवन में अपना सकें।

निरंतर सीखते रहने की कला से व्यक्ति अपने हुनर में प्रवीण होता है; क्योंकि सीखता वही है, जो अपनी कमियों को निरंतर दूर करने में लगा रहता है और अपनी कार्यकुशलता को बढ़ाता है। सीखने की प्रक्रिया एक तरह से हमारे कार्यों में वह रगड़ पैदा करती है, वह चमक पैदा करती है, जिसके कारण उसमें कोई खोट नहीं रह पाता। जिस तरह से लोहे को यों ही छोड़ दिया जाए तो उसमें जंग लगनी आरंभ हो जाती है, लेकिन यदि उसे समय-समय पर रगड़ा जाए तो उसमें जंग नहीं लगती है और उसकी चमक भी बढ़ जाती है। उसी तरह से सीखते रहने की कला हमारे जीवन में वह पैनापन लाती है, जिसके कारण हमारी कार्यकुशलता की धार कभी फीकी नहीं पड़ती, बल्कि समय के साथ और भी धारदार व उपयोगी हो जाती है। ❑

संसार में पैसों की चमक-दमक बहुत जगह देखी जा सकती है और उसके आधार पर जो खरीदा जा सकता है, उसकी सज-धज भी अपनी चमक-दमक दिखाती; आँखों में चकाचौंध उत्पन्न करती देखी जा सकती है। किन्हीं-किन्हीं का रूप-लावण्य भी मनमोहक दीख पड़ता है। कलाकार, व्यवसायी, गुणी भी कई देखे जाते हैं, पर ऐसे कम ही दीख पड़ते हैं; जिन्होंने अपने साहस और पौरुष के सहारे अवरोधों से टकराते हुए प्रगति का पथ प्रशस्त किया हो। जिन्होंने गिरों को उठाया, उठों को चलाया, चलतों को दौड़ाया और दौड़तों को उछाला हो। अपनी राह तो सभी चल लेते हैं, पर सराहना उसकी है जो अपनी नाव पर अनेकों को बैठाकर उन्हें इस पार से उस पार पहुँचा सके। इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि ऐसी प्रचंड सामर्थ्य हर किसी के भीतर होते हुए भी उसका सदुपयोग कर सकना तो दूर, पहचानना तक नहीं बन पड़ता।

—परमपूज्य गुरुदेव

चेतना की शिखर यात्रा —217

राजनीति से हटकर

विगत अंक में आपने पढ़ा कि जनवरी, 1977 में आम चुनावों के होने की घोषणा के पश्चात कई प्रतिष्ठित राजनीतिक विभूतियों का शांतिकुंज आना हुआ। उन्हीं दिनों मध्य प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्यामाचरण शुक्ल केंद्रीय नेतृत्व की ओर से मार्गदर्शन लेने दिल्ली आए। अकस्मात् ही पूज्यवर के दर्शनों का मन बना वे शांतिकुंज आ पहुँचे। शांतिकुंज में शिविर हेतु बड़ी संख्या में उपस्थित मध्य प्रदेश के कार्यकर्त्तागण संयोगवश अपने प्रदेश के मुख्यमंत्री के आने की सूचना से एकत्रित हो उन्हें देखने व सुनने के लिए उत्सुक हो उठे। पूज्यवर से भेंट के उपरांत कार्यकर्त्ताओं को संबोधित कर उन्होंने गायत्री परिवार से अपने पूर्व के संबंध एवं पूज्य गुरुदेव की उन पर अनुकंपा का जिक्र किया। राजनीति को अपना कार्यक्षेत्र चुनने वाले ऐसे कई राजनेता पूज्यवर से मिलने आया करते थे एवं पूज्यवर सभी को सामाजिक उत्थान के लिए प्रयत्न करने का संदेश देते थे। आइए पढ़ते हैं आगे का विवरण—

समर्थन की निराशा

गुरुदेव के नाम, आशीर्वाद का उपयोग करने की बात यहीं तक सीमित नहीं थी। उच्चस्तर पर भी उनका समर्थन हासिल करने की कोशिश हुई थी। आपात्काल के दिनों में विभिन्न दलों के राजनेताओं ने गायत्री परिवार में अपने लिए आश्रय तलाशा था और इसके सामाजिक-सांस्कृतिक कार्यक्रमों में हाथ बँटाया था। पहले कहा जा चुका है कि उनके राजनीतिक रुझानों और संबंधों के बारे में गायत्री परिवार से कुछ छिपा नहीं था। कुछ वरिष्ठ जनों के बारे में तो गुरुदेव को भी प्रत्यक्ष जानकारी थी और वे उनकी अनुमति से शांतिकुंज में भी रहे थे। शांतिकुंज में रहने की अनुमति देते हुए उनसे सिर्फ यही अपेक्षा की गई थी कि वे किसी तरह की राजनीतिक गतिविधियों का संचालन या निर्देशन न करें।

जनवरी, 1977 आते-आते उस तरह के वरिष्ठ राजनीतिक कार्यकर्त्ता शांतिकुंज छोड़कर चले गए। आश्रम के अनुशासन नियम नहीं निभ पाने की मजबूरी हो या राजनीतिक सक्रियता का तकाजा, कारण जो भी रहे हों वे ज्यादा टिक नहीं पाए। आपात्काल समाप्त हुआ तो उनमें से कुछ अपने-अपने दलों की केंद्रीय कमान का संदेश लेकर आए। इनमें दो केंद्रीय मंत्री, एक विरोधी दल का समर्थन-संचालन करने वाले सांस्कृतिक संगठन के वरिष्ठ नेता और समाज में रचनात्मक आंदोलन चला रहे गांधीवादी संगठन के एक प्रतिनिधि भी थे।

जिन केंद्रीय मंत्री ने शांतिकुंज आकर संपर्क किया था, उनका कहना था प्रधानमंत्री स्वयं शांतिकुंज आना चाहती हैं। वे गुरुदेव का आशीर्वाद और समर्थन चाहती हैं। यहाँ आकर वे सिर्फ गुरुदेव से भेंट करेंगी। किसी तरह का शोर-शराबा या समाचार-प्रचार नहीं होगा। इस तरह के आगमन से किसे परहेज हो सकता था सो श्रीमती गांधी के आने का कार्यक्रम लगभग निश्चित हो गया। फरवरी, 1977 के अंतिम सप्ताह की कोई तिथि तय हुई। इसी बीच राजधानी के एक समाचारपत्र में खबर छपी कि श्रीमती गांधी स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय रहे आचार्य श्रीराम शर्मा से भेंट करने जाएँगी। वे महात्मा गांधी के सहयोगी रहे हैं और बाद में सांस्कृतिक, आध्यात्मिक पुनरुत्थान के कार्यक्रमों में व्यस्त हो गए। खबर कांग्रेस के सूचना स्रोतों से आई थी और इसमें यह भी उल्लेख था कि आचार्यश्री अब भी खादी के वस्त्र पहनते हैं। भारतीय धर्म और विश्वासों के प्रबल समर्थक और प्रचारक होते हुए भी उन्होंने दूसरे धर्म-संप्रदायों के बारे में कभी कोई टिप्पणी नहीं की। यह खबर पहले एक छोटे स्थानीय समाचारपत्र में छपी। अगले दिन 'नवभारत टाइम्स' और 'हिंदुस्तान' के डाक संस्करणों में प्रकाशित हुई। राजधानी के बाहर से प्रकाशित होने वाले दूसरे अखबारों ने भी इस सूचना को महत्त्व दिया।

समाचार माध्यमों में आई इस सूचना से संदेश जा रहा था कि गुरुदेव धर्मपुरुष होने से पहले राजनीतिक और वह भी कांग्रेस कार्यकर्त्ता रहे हैं। आपात्काल की ज्यादतियों से त्रस्त जनसाधारण को सरकार के पक्ष में लाना है, उन्हें सत्तारूढ़ दल के प्रति नरम बनाना है। इसलिए वे कांग्रेस का सहयोग करने का मन बना रहे हैं। इस बारे में गायत्री परिवार के परिजनों ने भी जिज्ञासा की। लेकिन उनके पूछने से पहले ही शांतिकुंज की ओर से एक पत्र कांग्रेस के केंद्रीय कार्यालय और प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के पास व्यक्तिगत तौर पर भेज दिया गया। उसमें छप रहे समाचारों का उल्लेख करते हुए स्पष्ट किया गया था कि गुरुदेव स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय जरूर रहे हैं, लेकिन किसी दल विशेष के प्रति उनका कोई रुझान नहीं है। श्रीमती गांधी का आश्रम में स्वागत है, लेकिन उससे आगे-पीछे या उसी दिन किसी और पार्टी के वरिष्ठ नेता आना चाहेंगे तो उनका भी स्वागत होगा। जिन समाचारपत्रों में खबर छपी थी, उनमें भी कुछ के कार्यालयों में इस आशय की सूचना भिजवा दी गई। यह आग्रह भी किया गया कि संभव हो तो खबर के बारे में स्पष्टीकरण प्रकाशित कर दिया जाए। यह ध्यान नहीं दिया गया कि समाचारों का स्पष्टीकरण छपा या नहीं, लेकिन इस प्रक्रिया के बाद श्रीमती गांधी का शांतिकुंज आना स्थगित हो गया।

तत्कालीन प्रधानमंत्री की यात्रा निश्चित होने और फिर टल जाने की खबर ज्यादा चर्चित नहीं हुई थी। अखबारों में उनके आने की सूचना तो छपी थी, लेकिन कार्यक्रम निरस्त होने की खबर नहीं आई थी। शायद यही कारण होगा कि दूसरे राजनीतिक दलों में भी गायत्री परिवार का जनाधार और लोकप्रियता को ललचाई दृष्टि से देखा जाने लगा। उन दिनों उत्तर प्रदेश के एक नामी नेता हेमवती नंदन बहुगुणा ने कांग्रेस (इं) छोड़कर लोकतांत्रिक कांग्रेस का गठन किया था। तत्कालीन केंद्रीय खाद्य और आपूर्ति मंत्री बाबू जगजीवन राम भी पार्टी से अलग हो गए थे। उनके नेतृत्व में नई कांग्रेस बनी थी। उनके साथ कुछ और नेता आपात्काल लागू करने वाली सरकार और नेताओं को हराने का आह्वान करते चुनाव मैदान में उतर गए थे। उन्हीं दिनों कांग्रेस से निकले इन नेताओं और कांग्रेस का विकल्प देने के लिए विभिन्न दलों का गठबंधन हुआ। इस संगठन ने दिल्ली के रामलीला मैदान में एक बड़ी सभा का आयोजन किया।

रैली में मिले भारी जनसमर्थन, विपक्षी दलों के एक मंच पर आ जाने और अखबारों में आपात्काल की ज्यादतियों के वृत्तांत छपने से आभास होने लगा था कि चुनाव परिणाम अप्रत्याशित होंगे। नतीजे कांग्रेस के खिलाफ ही जाते दिखाई दे रहे थे। 4 फरवरी की शाम ओडिशा की पूर्व मुख्यमंत्री नंदिनी सत्पथी लोकतांत्रिक कांग्रेस के नेता हेमवती नंदन बहुगुणा से मिलीं। मुलाकात दिल्ली में हुई। उस मुलाकात में दोनों नेताओं ने विचार किया। विभिन्न मुद्दों पर चर्चा के साथ नंदिनी सत्पथी ने यह सुझाव भी रखा कि परिवर्तन के दौर में एक ऐसे संगठन को भी अपने साथ जोड़ना चाहिए, जो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और सर्वोदय आंदोलन के समान प्रभावशाली तो हो, लेकिन वह राजनीति में दखल नहीं रखता हो। कहते हैं कि बहुगुणा जी इस पर मुस्करा दिए थे और बोले थे कि उस संगठन को राजनीति में कोई रुचि ही नहीं होगी तो वह हमारे साथ आएगा ही क्यों? इस पर श्रीमती सत्पथी ने कहा था कि गायत्री परिवार हमारी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के लिए कैनवास का काम कर सकता है। उसका नैतिक समर्थन भी पर्याप्त है। फिर वे बोली थीं कि आपको याद होगा, पिछले दो वर्षों में हुई अंधाधुंध गिरफ्तारियों के दौरान संघ और सर्वोदय दोनों ही आंदोलनों के लोग गायत्री परिवार की ओर झुके थे। इन संगठनों के कार्यकर्त्ताओं ने पीले वस्त्र पहनकर गायत्री परिवार में मिलकर काम किया था।

बहुगुणा जी ने कहा कि आप चाहें तो हम आचार्यश्री के पास चल सकते हैं, पर मैं उन्हें जितना जानता हूँ, उसके अनुसार उनसे समर्थन की उम्मीद नहीं की जा सकती। कम-से-कम वे हमें चुनाव जीतने का आशीर्वाद तो नहीं ही देंगे। न हमें देंगे और न ही उन लोगों को, जो वापस सत्ता में आने के लिए उनके पास जाते रहे हैं और अब भी जा रहे हैं।

धर्मभावना का प्रभाव

बहुगुणा जी ने इस बातचीत के दौरान 1974 की एक घटना का जिक्र किया। उन दिनों वे उत्तर प्रदेश में मुख्यमंत्री थे। बदरीनाथ मंदिर के जीर्णोद्धार की चर्चा चल रही थी। सवाल था कि इस काम को सरकार कराए या किसी सामाजिक संगठन को सौंप दिया जाए। बहुगुणा जी मंदिर का काम सरकार द्वारा ही कराने के पक्ष में थे। निजी तौर पर श्रद्धालु और ईश्वरविश्वासी होते हुए भी बहुगुणा जी धार्मिक मामलों में ऐसा कोई कदम उठाने के पक्ष में नहीं थे, जिससे समाज के दूसरे वर्गों को कोई आपत्ति हो। उन दिनों वे पुरातत्त्व विभाग या ऐतिहासिक इमारतों की रक्षा और सार-सँभाल के

लिए बने विभागों के बारे में सोच रहे थे कि वहाँ से कोई प्रबंध हो सके। प्रसिद्ध उद्योगपति बिड़ला बंधुओं ने भी बदरीनाथ मंदिर के जीर्णोद्धार की इच्छा जताई थी। बिड़ला उद्योग समूह और परिवार ही इस काम की पूरी जिम्मेदारी लेना चाहते थे। साधु-संतों और धर्मानुरागियों का एक वर्ग था, जो मंदिर को बिड़ला परिवार के हाथों सौंप देने के खिलाफ था। उनका तर्क था कि इस तरह मंदिर का पारंपरिक स्वरूप बदल जाएगा। वह बदरीनाथ मंदिर की जगह बिड़ला मंदिर के नाम से जाना जाने लगेगा। इस द्वंद्व से उबरने के लिए बहुगुणा जी ने मई, 1974 में बदरीनाथ की यात्रा की थी। वहाँ के साधु-संतों से मिले थे। दूसरे इलाकों में बदरीनाथ मंदिर को किसी निजी और औद्योगिक घराने को सौंप देने का भले ही विरोध हो रहा हो, लेकिन उस क्षेत्र में प्रभावशाली साधु-संत और धर्मगुरु पता नहीं क्यों मंदिर को आधुनिक रूप देने के पक्ष में थे। इस पृष्ठभूमि का हलका-सा जिक्र करते हुए बहुगुणा जी ने नंदिनी सत्पथी से कहा कि लौटते हुए वे हरिद्वार में शांतिकुंज भी रुके थे और आचार्यश्री के पास गए थे। मुलाकात बहुत अंतरंग-आत्मीय थी। बदरीनाथ मंदिर का प्रसंग चला तो गुरुदेव ने कहा कि आपको थोड़ा-बहुत विरोध सहना पड़ेगा, लेकिन मंदिर का पारंपरिक स्वरूप बनाए रख सकें तो सबका भला होगा। आपका भी होगा ही।

आपका भी होगा ही। सुनकर बहुगुणा जी अवाक् गुरुदेव की ओर देखने लगे। स्पष्ट करते हुए गुरुदेव ने कहा—"आप अभी प्रांत के मुख्यमंत्री हैं। जरूरी नहीं कि इस पद पर निरंतर बने रहें। आपको दूसरी बड़ी जिम्मेदारियाँ निभाने के लिए इस पद से हटना भी पड़ सकता है। कठिन परिस्थितियाँ भी झेलनी पड़ सकती हैं। इसलिए धर्मभावनाओं का जितना निर्वाह कर सकें, उतना ही अच्छा है।" (क्रमशः)

बेटे ने अपने पिता से कहा—"पिताजी! हम भगवान का भजन नहीं करेंगे। भगवान पक्षपाती है, उसने किसी को बहुत धन दिया, किसी को बहुत थोड़ा। ऐसे भेदभाव करने वाले की याद हम क्यों करें?"

उस समय पिता ने कोई उत्तर नहीं दिया। दूसरे दिन पिता ने कहा—"बेटे! आज हम घर के सामने बाग लगाएँगे।" पिता-पुत्र दोनों बाग लगाने में जुट गए, पर बेटा असमंजस में था कि पिताजी ने उत्तर क्यों नहीं दिया।

एक बीज नीम का बोया गया, दूसरा आम का। दो फुट के फासले पर दोनों पेड़ बढ़ने लगे। पेड़ बड़े हुए, कुछ दिन में फल आए, एक का कड़ुआ दूसरे का मीठा। पिता ने कहा—"बेटा! एक ही धरती के दो बेटों ने एक ही स्थान पर समान सुविधाएँ पाईं, पर यह विषमता कहाँ से आ गई।" बेटे की समझ में आया कि यह प्रकृति गुणप्रधान है। यहाँ जो जैसा चाहता है, कर्मानुसार अपनी सृष्टि बना लेता है, परमात्मा उसके लिए दोषी नहीं।

अमृतवर्षणीय है शरद पूर्णिमा

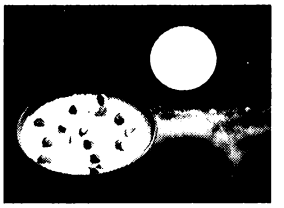

शरद पूर्णिमा का बड़ा महत्त्व है। इसका आर्थिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं आयुर्वेदिक महत्त्व है। वर्षा को शीत से जोड़ने वाली संधि ऋतु है शरद। शरद एवं वसंत जैसे जुड़वाँ भाई हैं। शीतल, मखमली सुहावने, थोड़े-थोड़े गुनगुने दिन और पल-प्रतिपल शीतल होती रातों की ऋतु शरद है और उन्हीं रातों के बीच में आती है शरद पूर्णिमा।

एक तो ऋतु का खुमार उस पर पूरा चाँद। यों तो पूर्णिमा का चाँद अपने आप में पूर्ण और सुंदर होता है, लेकिन जब बात शरद पूर्णिमा के चाँद की हो तो उसमें मिथक भी जुड़ते हैं, किंवदंतियाँ भी और कहानियाँ भी। शरद पूर्णिमा का संबंध लक्ष्मी जी के जन्म से लेकर भगवान कृष्ण के महारास से जुड़ता है। वर्षा ऋतु के अवसान और शीत के आगमन के संधिकाल का समय मौसम-परिवर्तन और त्योहारों की आमद के दिन हुआ करते हैं। दशहरे के बाद करवा चौथ और दीपावली से पहले पड़ने वाली शरद पूर्णिमा का सिर्फ सौंदर्य ही नहीं, स्वास्थ्य के लिए भी बड़ा महत्त्व माना गया है।

आयुर्वेद की परंपरा में शीत ऋतु में गरम दूध का सेवन अच्छा माना जाता है। इसी दिन से रात में गरम दूध पीने की शुरुआत की जानी चाहिए। वर्षा ऋतु में दूध का सेवन वर्जित माना जाता है। हमारी परंपरा में कृष्ण का गोपियों के साथ महारास का भी आख्यान मिलता है और आयुर्वेद में इसका औषधीय महत्त्व भी है।

मान्यता है कि शरद पूर्णिमा के चंद्रमा से अमृत बूँदें झरती हैं, इसलिए प्रसाद के तौर पर खीर का भोग लगाया जाता है। चाँदनी को प्रतीक बनाते हुए श्वेत वस्त्र से राधा-कृष्ण का शृंगार किया जाता है। शरद पूर्णिमा की दूधिया रोशनी में आसमान को निहारना एक अलग ही अनुभव देता है। चारों तरफ सिर्फ धवल चाँदनी दिखाई देती है, जिसमें छत पर बैठकर सुई में धागा पिरोना हो या चावल की खीर बनाकर उसमें अमृत-बूँदें गिरने का इंतजार करना हो—ये सभी कृत्य मन को बहुत सुकून देते हैं।

आयुर्वेद में भी शरद ऋतु का वर्णन किया गया है। इसके अनुसार शरद में दिन बहुत गरम और रात बहुत ठंढी होती हैं। इस ऋतु में पित्त या एसिडिटी का प्रकोप ज्यादा होता है। जिसके लिए ठंढे दूध और चावल को खाना अच्छा माना जाता है।

यही वजह है कि शरद ऋतु में दूधमिश्रित खीर बनाने का प्रावधान है। शरद ऋतु को अमृत संयोग ऋतु भी कहा गया है; क्योंकि शरद की पूर्णिमा के दिन चंद्रमा की किरणें धरती पर छिटककर अन्न-वनस्पति आदि में औषधीय गुणों को सींचती हैं, इसलिए स्वास्थ्य की दृष्टि से शरद पूर्णिमा को बहुत महत्त्वपूर्ण माना गया है। कहते हैं कि इस दिन चंद्र-किरणों से अमृत वर्षा होती है।

आश्विन मास की शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को 'शरद पूर्णिमा' कहते हैं। ज्योतिष की मान्यता के अनुसार संपूर्ण वर्ष में केवल इसी दिन चंद्रमा अपनी 16 कलाओं से परिपूर्ण होकर धरती पर अपनी अद्‌भुत छटा बिखेरते हैं। इस दिन चंद्रमा पृथ्वी के अत्यंत समीप आ जाते हैं। धर्मशास्त्रों में इसी दिन को 'कोजागरा व्रत' माना गया है। कोजागरा का शाब्दिक अर्थ है कौन जाग रहा? कहते हैं इस रात्रि में माँ लक्ष्मी की उपासना भी फलदायक होती है; क्योंकि ब्रह्मकमल भी इसी रात खिलता है।

कार्तिक का व्रत भी शरद पूर्णिमा से ही प्रारंभ होता है। इस पूरे माह पूजा-पाठ और स्नान-परिक्रमा का दौर चलता है। कहा जाता है इस दिन भगवान श्रीकृष्ण ने गोपियों संग महारास रचाया था, इसलिए इसे 'रास पूर्णिमा' भी कहा जाता है। कहीं-कहीं इसे कौमुदी पूर्णिमा भी कहते हैं। कौमुदी का अर्थ है—चंद्रमा की रोशनी का बढ़ना, इसीलिए इसी दिन वैद्य लोग अपनी जड़ी-बूटी और औषधियाँ चाँद की रोशनी में बनाते हैं। जिससे ये रोगियों को दुगना फायदा दें। अध्ययन के अनुसार शरद पूर्णिमा के दिन औषधियों की स्पंदन क्षमता अधिक होती है। रसाकर्षण के कारण इनके अंदर का पदार्थ सांद्र होने लगता है, तब रिक्तिकाओं में विशेष प्रकार की ध्वनि उत्पन्न होती है।

लंकाधिपति रावण शरद पूर्णिमा की रात किरणों को दर्पण के माध्यम से अपनी नाभि पर ग्रहण करता था। इस

प्रकार से उसे पुनर्योवन शक्ति प्राप्त होती थी। चाँदनी रात की मध्यरात्रि बारह बजे के बीच कम वस्त्रों में घूमने वाले व्यक्ति को भी ऊर्जा प्राप्त होती है। सोमचक्र, नक्षत्रीय चक्र और आश्विन के त्रिकोण के कारण शरद ऋतु से ऊर्जा का संग्रह होता है और वसंत में निग्रह होता है। अध्ययन के अनुसार दुग्ध में लैक्टिक अम्ल और अमृत तत्त्व होता है। यह तत्त्व किरणों से अधिक मात्रा में शक्ति का शोषण करता है। चावल में स्टार्च होने के कारण यह प्रक्रिया और आसान हो जाती है।

इसी कारण ऋषि-मुनियों ने शरद पूर्णिमा की रात्रि में खीर खुले आसमान में रखने का विधान किया है। यह परंपरा विज्ञान पर आधारित है। शोध के अनुसार खीर को चाँदी के पात्र में बनाना चाहिए। चाँदी में प्रतिरोधकता अधिक होती है। इससे विषाणु दूर रहते हैं। इस प्रकार शरद पूर्णिमा का एक अद्‌भुत महत्त्व है, जो कभी भुलाया नहीं जाना चाहिए। ❑

घटना त्रेतायुग की है, जब महाराज दिलीप का शासन था। महाराज दिलीप के सुशासन में सभी सुखी थे, परंतु उन दिनों दुर्दम्य नामक एक दस्यु ने भारी उपद्रव मचा रखा था। उसके आतंक-अत्याचार एवं क्रूरता ने सभी को पीड़ित कर रखा था। उन्हीं दिनों उस ग्रामीण क्षेत्र में महर्षि शिरीष नाम के संत पधारे। गाँववालों ने महर्षि से निवेदन किया कि वे उन्हीं के गाँव में रह जाएँ। वहाँ की प्राकृतिक सुरम्यता, ग्रामीण जनों का यह निश्छल आचरण देखकर संत शिरीष ने भी उनकी बात मान ली, परंतु उन्होंने यह अवश्य कहा कि गाँव से बाहर रहेंगे।

उन सबने मिलकर गाँव के बाहर शिवमंदिर में उनकी व्यवस्था कर दी। वे वेदमाता गायत्री के अनुरक्त भक्त थे। वे ब्राह्ममुहूर्त से लेकर मध्याह्न वेला तक गायत्री-साधना करते थे। महर्षि के इस तपस्वी जीवन को देखकर सभी आनंदित थे, ग्रामीण जन संत शिरीष के सत्संग से एक ओर जहाँ आनंदित थे, वहीं दस्यु दुर्दम्य की धमकियों से भयभीत। जब भी वे इसकी चर्चा उनसे करते, तो वे उन्हें यह कहकर चुप करा देते कि आदिशक्ति जगन्माता की कृपा पर भरोसा रखो। यह संतवाणी उन्हें आश्वस्ति तो देती, फिर भी चिंता तो थी ही।

इन्हीं दिनों पता नहीं कैसे दैवसंयोगवश दस्यु दुर्दम्य बुरी तरह से अस्वस्थ हो गया। गाँव के लोगों ने समझा कि यह सब उसके बुरे कर्मों का कुफल है। किसी ने उससे मिलना भी उचित नहीं समझा, परंतु संत शिरीष उसे अपने पास शिवमंदिर ले आए। उनकी अहर्निश चलने वाली साधना में यह सेवा-साधना भी जुड़ गई। अपने आयुर्वेद ज्ञान से वे उसकी चिकित्सा करते, साथ ही स्वयं उसके लिए भोजन पकाते। गाँववालों में से कोई भी उनके पास भी नहीं जाना चाहता था; क्योंकि दुर्दम्य के लिए उनके मन में भारी आक्रोश था। इस सबसे अछूते महात्मा शिरीष उसकी दिन-रात सेवा किए जा रहे थे। उनकी चिकित्सा एवं सेवा के परिणाम से वह कुछ महीनों में स्वस्थ हो गया। महर्षि शिरीष द्वारा की गई सेवा ने उसका हृदय परिवर्तित कर दिया और उसके अंदर आए इस परिवर्तन को देखकर गाँववालों का हृदय भी उसके प्रति बदल गया।

मैं कौन हूँ?

एक बार बकरियों के एक झुंड पर एक बाघिन ने हमला किया। वह बाघिन गर्भवती थी। उसी समय एक शिकारी ने भी उस पर तीर चला दिया, जिससे उसकी मृत्यु हो गई, परंतु मरने से पहले उसने एक शावक को जन्म दे दिया। उसका नवजात बच्चा बकरियों के झुंड में पलने-बढ़ने लगा। बकरियों के साथ वह भी चारा खाना सीख गया। बकरियाँ जिस प्रकार में-में करती थीं, उसी प्रकार वह भी करने लगा। धीरे-धीरे वह बच्चा बड़ा हो गया।

एक दिन बकरियों के झुंड पर एक बाघ ने आक्रमण किया। बकरियों के झुंड में चारा खाने वाले बाघ को देखकर वह दंग रह गया। उसने दौड़कर चारा खाने वाले बाघ को पकड़ा तो वह में-में चिल्लाने लगा। वन का बाघ उसे जबरदस्ती घसीटकर तालाब के पास ले गया और उस पर चिल्लाते हुए बोला—"जरा पानी में अपनी परछाईं देखो। ध्यान से देखो, तुम बिलकुल मेरे जैसे दिख रहे हो।"

चारा खाने वाला बाघ स्वयं को बाघ मानने को तैयार ही नहीं हुआ। वह तो बार-बार में-में चिल्ला रहा था, परंतु वन के बाघ ने उसे जबरदस्ती उसका चेहरा दिखाया। फिर क्या था, अपना सच्चा स्वरूप जानते ही बाघ के आनंद का ठिकाना न रहा। वह आनंदित व प्रफुल्लित अनुभव करने लगा। वह खुशी के मारे बल्लियों पर उछलने लगा। सरोवर में उसने जी भरकर मीठा जल पिया और वन में जाकर एक जोरदार गर्जना की। उसकी भयंकर गर्जना सुनकर वन के सभी जीव भयवश काँपने लगे और अपनी जान बचाने को इधर-उधर भागने लगे।

पहली बार उसे अपने वास्तविक स्वरूप का बोध हुआ था। तब वन के बाघ ने उससे कहा—"अब तुम समझ गए न? जो मैं हूँ, वही तुम हो। चलो अब तुम भी मेरे साथ वन में चलो।" इस प्रकार वन के बाघ के संपर्क में आते ही बकरियों के झुंड में रहने वाले बाघ का जीवन बदल गया और वह बिलकुल बाघ की तरह से अपने वास्तविक स्वरूप में रहने लगा।

मनुष्य का जीवन भी तो बकरियों के झुंड में रहने वाले उस बाघ की तरह ही है, जो सुख पाने के लिए विषयभोगों के पीछे भागता फिर रहा है। यह भाग-दौड़ पिछले कई जन्मों से बदस्तूर जारी है। उसे इस सत्य का आभास ही नहीं है कि मनुष्ययोनि, भोगयोनि नहीं; कर्म योनि है। इस भाग-दौड़ में मनुष्य भूल जाता है कि अन्य पशु-पक्षी एवं जीव तो भोगयोनि में हैं, इसलिए भोगों के पीछे भागना उनकी नियति है। वे उनसे मुक्त नहीं हो सकते, परंतु मानव जीवन तो देवदुर्लभ है। यह कर्मयोनि है।

मनुष्य इस योनि में कर्म करके स्वयं को विषयभोगों एवं संसार के सभी प्रकार के बंधनों व कर्म-संस्कारों के बंधन से मुक्त कर सकता है और वह आनंद के परम स्रोत परमपिता परमेश्वर से जुड़कर सदा-सदा के लिए परम आनंद को प्राप्त कर सकता है, ब्रह्मानंद को प्राप्त कर सकता है।

ऐसा तभी संभव है, जब उसे भी उसके वास्तविक स्वरूप का बोध हो जाए और उसे उसके वास्तविक स्वरूप का बोध कराने को उसे कोई गुरु मिल जाए, सद्गुरु मिल जाए। क्यों? क्योंकि गुरु ही तो हैं, जो अपने प्रचंड तप की अग्नि से शिष्य के अंतस् में आत्मज्ञान की ज्योति जलाते हैं और उस ज्योति के जलते ही शिष्य के अज्ञान का अँधेरा सदा-सदा के लिए मिट जाता है और उस अँधेरे के मिटते ही शिष्य को, साधक को अपने वास्तविक स्वरूप का बोध हो जाता है।

अपने सत्यस्वरूप का बोध होने पर उसकी आत्मचेतना, आनंद के परम स्रोत, परमात्मचेतना से जुड़ते ही सोऽहम्, शिवोऽहम्, तत्त्वमसि, अयमात्माऽब्रह्म, सच्चिदानंदोऽहम् की परम आनंदमय अनुभूति में उतर आती है। अस्तु हमें भी आवश्यकता है एक ऐसे सद्गुरु की, तपोनिष्ठ गुरु की, ब्रह्मनिष्ठ गुरु की—जिनकी शरण में जाकर, जिनका कृपा-प्रसाद पाकर हमें भी अपने आत्मस्वरूप का बोध हो सके और हम भी अपने जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकें। ❑

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार— 138

किशोरों की व्यावहारिक समस्याओं का मनोवैज्ञानिक अध्ययन

जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य जीवन की प्रत्येक आयु-अवस्था का अपना एक अलग ही महत्त्व और विशेषता है। चाहे बाल्यकाल का आनंद हो, युवाओं की प्रखरता हो, प्रौढ़ों की कर्त्तव्यपरायणता हो अथवा बुजुर्गों का स्नेहिल संरक्षण व मार्गदर्शन—सभी वय का अनूठा शृंगार व सौंदर्य हैं, परंतु यह भी सत्य है कि क्रम-विकास की इस निरंतरता में किसी भी स्तर पर यदि बाधाएँ अथवा अव्यवस्था उत्पन्न हो जाएँ तो मनुष्य का संपूर्ण जीवन निरर्थकता का पर्याय मात्र बनकर रह जाता है।

यही कारण है कि जीवन के तत्त्वदर्शियों ने मनुष्य की प्रत्येक आयु-अवस्था को सजाने-सँवारने के लिए विशेष रीति-नीति और जीवनचर्या को अपनाने का मार्गदर्शन किया है। हमारी संस्कृति में संस्कारपद्धति एवं वर्णाश्रम आदि से लेकर योग-अध्यात्म के सिद्धांतों के माध्यम से जीवन निर्माण एवं विकास के इस विज्ञान को बखूबी समझा जा सकता है।

आधुनिक समाज के लिए यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है कि उसके पास मनुष्य जीवन के विकास एवं प्रबंधन की इतनी प्राचीन और वैज्ञानिक विधाएँ मौजूद होते हुए भी वह व्यक्तित्व को सुसमुन्नत बनाने में विफल हो रहा है। आज मनुष्य जीवन उम्र के क्रांतिकारी और परिवर्तनकारी दौर में अनचाही-अनजानी चुनौतियों और समस्याओं का शिकार बन रहा है।

बाल्यावस्था, युवावस्था, जवानी, बुढ़ापा—उम्र के सभी स्तरों पर मनुष्य जीवन अनेक विषमताओं से जूझ रहा है, जिसका सीधा असर स्वास्थ्य और मनोसामाजिक व्यवहार की विकृतियों के रूप में सामने आ रहा है। ऐसे में देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार ने इस दिशा में पहल करते हुए एक महत्त्वपूर्ण शोधकार्य संपन्न कराया है।

मनुष्य जीवनकाल की किशोरवय अवस्था से संबंधित व्यक्तित्त्व विकास की चुनौतियों और उनके समाधान के उपायों की खोज करने वाले इस अध्ययन को देव संस्कृति विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान विभाग के अंतर्गत सन्, 2018 में शोधार्थी मनोरंजन त्रिपाठी द्वारा पूर्ण किया गया है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ. प्रणव पण्ड्या के विशेष संरक्षण एवं डॉ. प्रमा शर्मा के निर्देशन में किए गए इस शोधकार्य का विषय है—**'इफेक्ट ऑफ साइकोसोशल फैक्टर्स ऑन बिहेवियरल प्रोब्लम्स इन एडोलिसेंट एंड देयर मैनेजमेंट थ्रू साइको यौगिक मॉडल्स।'**

शोधार्थी द्वारा इस प्रायोगिक एवं विवेचनात्मक अध्ययन के लिए गायत्री विद्यापीठ शांतिकुंज, हरिद्वार के 526 विद्यार्थियों का चयन किया गया, जिनकी उम्र 14 से 17 वर्ष के मध्य थी। आकस्मिक प्रतिचयन विधि द्वारा चयनित इन किशोरों पर प्रयोग प्रारंभ करने से पूर्व इनका वैज्ञानिक परीक्षण किया गया। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य किशोर अवस्था में उत्पन्न व्यावहारिक एवं मनोसामाजिक समस्याओं के लिए समाधान प्राप्त करना था।

समस्याएँ जानने के लिए शोधार्थी ने विद्यार्थियों की भावनात्मक योग्यता और सामाजिक परिपक्वता का मनोवैज्ञानिक रीति से मापन किया। मापन के द्वारा ऐसे किशोरों को चिह्नित किया गया, जिनमें आक्रामकता का स्तर उच्च एवं समायोजन स्तर निम्न था। तत्पश्चात चयन किए गए ऐसे किशोरों को मनोयौगिक मॉडल के अंतर्गत अपनाई गई विशिष्ट उपचारात्मक तकनीकों द्वारा 45 दिनों तक नियमित अभ्यास कराया गया।

शोधकार्य हेतु चयनित किशोरों के स्वास्थ्य परीक्षण हेतु जिन शोध उपकरणों को प्रयुक्त किया गया; वे हैं—डॉ. शीतला प्रसाद द्वारा निर्मित (2009) इमोशनल इन्टेलीजेन्स स्केल, डॉ. नलिनी राव द्वारा निर्मित (1986) राव सोशल मैचुरिटी स्केल (Rsms), कु.रोमा पाल और डॉ. तनसिम नकवी (1983) द्वारा निर्मित एग्रेशन स्केल तथा रागिनी दुबे द्वारा निर्मित (1993) एडोलिसेन्ट एडजस्टमेंट स्केल।

प्रयोग की प्रक्रियाओं का अभ्यास प्रारंभ करने से पूर्व शोधार्थी द्वारा उक्त उपकरणों द्वारा किशोरों का परीक्षण किया गया। तत्पश्चात द्वितीय समूह—जिनमें आक्रामकता

की तीव्रता और असमायोजन की समस्याएँ थीं—ऐसे 30 किशोरों को मनोयौगिक चिकित्सा प्रदान की गई। मनोयौगिक अभ्यास में विशिष्ट तकनीकों को सम्मिलित किया गया, जिनके अंतर्गत सूर्यनमस्कार 5 मिनट, जे.पी.एम.आर. 5 मिनट, कपालभाति 5 मिनट, अनुलोम-विलोम प्राणायाम 3 मिनट, भ्रामरी प्राणायाम 5 मिनट, ओम् उच्चारण 2 मिनट, तथा कॉग्निटिव बिहेवियर थेरेपी 35 मिनट थे।

उक्त मनोयौगिक प्रक्रियाओं को 45 दिन नियमित कराने के उपरांत उनका पुनः परीक्षण किया गया। परीक्षण से प्राप्त आँकड़ों का संग्रहण कर उनका सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर शोधार्थी द्वारा यह पाया गया कि मनोयौगिक अभ्यास का किशोरों के आक्रामक व्यवहार एवं समायोजन क्षमता पर सकारात्मक एवं सार्थक प्रभाव पड़ता है। साथ ही ये प्रक्रियाएँ किशोरों के चिंतन, चरित्र और व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन करते हुए संपूर्ण व्यक्तित्त्व को उन्नत बनाने में भी सहायक हैं।

इस शोध अध्ययन में सम्मिलित की गई मनोयौगिक प्रक्रियाओं की विशिष्टताओं के परिणामस्वरूप ही शोध के सकारात्मक एवं सार्थक परिणाम प्राप्त हुए हैं। शोधार्थी द्वारा प्रयुक्त किए गए मनोयौगिक माडल में मुख्यतः सात तकनीकों को अपनाया गया है, जिनमें प्रत्येक का स्वतंत्र रूप से अलग महत्त्व और प्रभाव है।

पहली विधि है—सूर्यनमस्कार। यह यौगिक अभ्यास अनेक आसनों, मंत्र-ध्यान और प्राणायाम का सम्मिलित रूप है। इसके नियमित अभ्यास से शारीरिक और मानसिक ऊर्जा का संतुलन प्राप्त होता है तथा व्यक्तित्व की संपूर्ण क्षमताओं का विकास होता है।

दूसरी विधि है—जे.पी.एम.आर.। यह ऐसी शारीरिक स्थितियों का अभ्यास है, जिससे तनाव, चिंता और आक्रामक व्यवहार में विशेष लाभ प्राप्त होता है। इस विधि में मांसपेशियों पर विशेष एवं अलग-अलग तरह से दबाव दिया जाता है और उन्हें तुरंत दबावमुक्त कर स्थिरता एवं शांति का अनुभव किया जाता है। इसका अभ्यास शरीर और मन में संतुलन स्थापित करने हेतु एक प्रभावकारी उपाय है। इस विधि के अध्ययन में क्रियाविधिसहित विस्तृत विवेचना की गई है।

तृतीय विधि है—कपालभाति प्राणायाम। यह श्वास-प्रश्वास की ऐसी विधि है, जिससे शरीर और मस्तिष्क की एक साथ शुद्धि होती है। यह फेफड़ों, गले से संबंधित रोगों एवं तनाव, अनिद्रा आदि मनोरोगों के लिए कारगर उपाय है। इसका अभ्यास शरीर और मन की कार्यक्षमता में वृद्धि कर जीवन को ऊर्जावान बनाने वाला यौगिक अभ्यास है।

चतुर्थ विधि है—अनुलोम-विलोम प्राणायाम। यह नासिका द्वारा श्वसन की एक विशेष प्रक्रिया है। इसके अभ्यास से शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक लाभ प्राप्त होते हैं। आयुर्वेद के अनुसार हमारे सभी रोगों का मूल कारण त्रिदोष है अर्थात वात-पित्त और कफ की विकृति। अनुलोम-विलोम प्राणायाम का अभ्यास त्रिदोषों से मुक्ति का श्रेष्ठतम उपाय कहा गया है। वैज्ञानिक दृष्टि से भी यह अवसाद, चिंता, तनाव को दूर कर श्वसन तंत्र, तंत्रिका तंत्र आदि पर सकारात्मक प्रभाव डालता है।

पंचम विधि है—भ्रामरी प्राणायाम। यह यौगिक अभ्यास आश्चर्यजनक रूप से मन को शांत करता है तथा तनावमुक्त एवं ऊर्जावान बनाता है। किशोरों के लिए क्रोध, उत्तेजना, चिंता, उद्वेग आदि समस्याओं के समाधान हेतु यह एक प्रभावशाली तकनीक है। इसके साथ ही यह याद्दाश्त, एकाग्रता और आत्मविश्वास जैसी आंतरिक क्षमताओं में भी वृद्धि करता है।

शतं वो अम्ब धामानि सहस्त्रमुत वो रुहः।
अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत॥

—यजुर्वेद 12/76

अर्थात—हे मातृवत् पोषण-गुण संपन्न औषधियो! आप सभी के सैकड़ों नाम हैं और सहस्त्रों अंकुर हैं। सैकड़ों कर्मों को सिद्ध करने वाली हे औषधियो! आप हमें आरोग्य प्रदान करें।

षष्ठम् विधि है—ओम् उच्चारण। संपूर्ण व्यक्तित्त्व पर सकारात्मक प्रभाव डालने वाला यह एक प्राचीन और महत्त्वपूर्ण यौगिक अभ्यास है। ओम् उच्चारण का अभ्यास सभी के लिए सहज सुलभ है। अध्यात्म विज्ञान की मान्यता में स्थूल, सूक्ष्म और कारण—तीनों शरीरों पर ओम् साधना का समान प्रभाव पड़ता है। इसके अभ्यास से मनोविकारों से

तो मुक्ति मिलती ही है, साथ ही व्यक्तित्त्व को प्रतिभाशाली बनाने वाली क्षमताओं का विकास भी होता है।

सप्तम तकनीक है—संज्ञानात्मक व्यवहारवादी चिकित्सा। यह एक मनोवैज्ञानिक उपचार-प्रक्रिया है, जिसमें मुख्य रूप से व्यक्ति की समझ और उसके व्यवहार के तरीकों का अंतर्संबंध ज्ञात कर सोच और व्यवहार के परिवर्तन द्वारा मनोवैज्ञानिक और व्यवहारगत समस्याओं का निराकरण किया जाता है। इस उपचार-विधि का प्रयोग प्राय: आक्रामक व्यवहार, चिंता, अवसाद आदि में किया जाता है। साथ ही अन्य रोगों की चिकित्सा में भी यह सहयोगी अंग के रूप में महत्त्वपूर्ण मानी जाती है।

इस शोध अध्ययन का यह मनोयौगिक मॉडल किशोरों के साथ-साथ अन्य वय के लोगों के लिए भी प्रभावकारी है, परंतु किशोरों की समस्याएँ आयु-वय के अनुरूप कुछ विशेष चुनौतियों-संघर्षों के रूप में होती हैं—जिनका व्यक्ति के बाह्य और आंतरिक पहलुओं से सीधा संबंध होता है।

अत: इस दृष्टि से यह शोधकार्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं उपादेयी है; क्योंकि इसमें व्यवहार, चिंतन, स्वास्थ्य, संवेग आदि सभी पहलू सार्थक उपचार-प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं तथा उनके समाधान में समग्रता की दृष्टि अपनायी गई है। ❑

हजरत मुहम्मद एक दिन फातिमा से मिलने उसके घर गए। वहाँ जाकर देखा कि उनकी बेटी ने हाथों में चाँदी के मोटे-मोटे कंगन पहने हैं और दरवाजों पर रेशमी परदे लहरा रहे हैं। मुहम्मद साहब बिना कुछ बोले उलटे पाँव घर वापस चल दिए और मसजिद में जाकर रोने लगे।

फातिमा कुछ न समझ सकी। उसने लड़के को दौड़ाया कि देख तो तेरे नाना घर आकर एकाएक क्यों चले गए?

लड़के ने जाकर देखा कि नाना मसजिद में बैठे रो रहे हैं। उसने घर से एकाएक वापस चले आने और इस प्रकार रोने का कारण पूछा। मुहम्मद साहब ने कहा—"यहाँ गरीब भूख से परेशान होकर मसजिद के सामने रो रहे हैं और वहाँ मेरी बेटी रेशमी परदों के बीच चाँदी के कड़े पहने मौज कर रही है, यह देखकर मुझे बड़ी शरम आई और मैं मसजिद में वापस चला आया।"

लड़के ने जाकर अपनी माँ को सारी बातें बतलाईं। फातिमा ने रेशमी परदों में चाँदी के कड़े बाँधकर पिता के पास भिजवा दिए। मुहम्मद साहब ने उन्हें बेचकर गरीबों को रोटी बाँटी और खुशी से जाकर मिले और बोले—"अब तू मेरी सच्ची बेटी है।"

एक महान विभूति—महर्षि अरविंद

महर्षि अरविंद स्वतंत्रता संग्राम के दौर की एक ऐसी विरल प्रतिभा, विलक्षण व्यक्तित्व एवं दिव्य विभूति थे, जिनकी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में निर्णायक भूमिका रही। हालाँकि वे कुछ ही काल के लिए भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में प्रकट हुए, लेकिन तब भी वे अपनी अमिट छाप छोड़ गए, जिसका सही मूल्यांकन अभी तक शायद नहीं हो पाया है।

विशेषज्ञों की दृष्टि में राजनीति में वे उल्का की तरह प्रकट हुए और उसी की तरह गायब हो गए। राजनीतिक वातावरण में इस उल्का का चौंधियाने वाला प्रकाश कभी धूमिल नहीं हुआ। उन्होंने जो लौ लगाई थी, वह भारतीय राजनीति को प्रकाश देती रही और फिर उचित उत्तराधिकारियों के हाथ में दे गए, जिन्होंने इसे सुदूर लक्ष्य तक पहुँचाया।

महर्षि अरविंद एक ही व्यक्तित्व में समाहित विद्वान, लेखक, कवि, साहित्यालोचक, दार्शनिक, क्रांतिकारी, राष्ट्रवादी, सामाजिक चिंतक, आदर्श शिक्षक, भारतीय शास्त्रों एवं संस्कृति के भाष्यकार, भविष्यद्रष्टा, महायोगी एवं ऋषि थे। एक ही व्यक्ति में इतनी सारी विशेषताएँ स्तब्ध करती हैं, लेकिन ईश्वरकृपा, दैवी प्रवाह महाकाल के अंशधर इस अवतारी युगदूत के माध्यम से दैवी योजना सक्रिय थी।

श्रीअरविंद का जन्म 15 अगस्त, 1872 को कोलकाता (कलकत्ता) में डॉ. कृष्णधन घोष के घर हुआ, जो पाश्चात्य संस्कृति के पुजारी थे। उन्होंने अपने सातवर्षीय बालक श्रीअरविंद को बड़े भाई संग इस कड़े आदेश के साथ इंग्लैंड भेजा कि वे किसी भी भारतीय चीज के संपर्क में न आएँ।

श्रीअरविंद की बाल्य एवं किशोरावस्था लंदन के सेंट पॉल स्कूल एवं केंब्रिज के किंग्स कॉलेज में व्यतीत हुई, जहाँ उन्होंने एक प्रतिभाशाली छात्र के रूप में अँगरेजी सहित लेटिन, यूनानी एवं फारसी भाषाओं पर पूर्ण अधिकार प्राप्त किया और जर्मन, इतालवी एवं स्पेनिश भाषाएँ भी सीखते रहे।

चौदह वर्ष के इस प्रवास के दौरान युवा श्रीअरविंद यूरोपीय संस्कृति एवं समाज के बारे में गहन अंतर्दृष्टि पा चुके थे। आईसीएस (इंडियन सिविल सर्विस) जैसी प्रतिष्ठित परीक्षा को उत्तीर्ण कर वे घुड़सवारी में जान-बूझकर पीछे रहकर अनुत्तीर्ण हो गए; क्योंकि उन्हें ऐसी नौकरी में कोई रुचि नहीं थी।

श्रीअरविंद को इंग्लैंड में रहते हुए ही आभास हो चुका था कि वे वैश्विक स्तर पर व्यापक उलट-फेर एवं परिवर्तनों के दौर से गुजर रहे हैं और उनमें उन्हें भाग लेना है। वे इंग्लैंड में ही भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के लिए काम करने वाली 'कमल और कटार' नामक एक गुप्त सभा में भरती हो गए। सन् 1893 में इक्कीस वर्ष की आयु में श्रीअरविंद ने जब पहली बार मुंबई (बंबई) के अपोलो बंदरगाह में पाँव रखा तब जाकर उन पर शांति एवं स्थिरता का अवतरण हुआ, जो जीवनपर्यंत उनके साथ बना रहा।

इसके बाद बड़ौदा राज्य में अपनी प्रशासनिक एवं शैक्षणिक सेवाएँ देते हुए उन्होंने भारतीय संस्कृति में गहरी डुबकी लगाई व धर्म, अध्यात्म एवं साहित्य का गहनता से मंथन किया। उन्होंने संस्कृत, बंगला और कई अन्य भारतीय भाषाएँ भी सीखीं और भारतीय संस्कृति की आत्मा के हर पहलू को आत्मसात् किया। इस तरह यहाँ के तेरह वर्ष उनके आत्मप्रशिक्षण, साहित्यिक क्रियाकलाप और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के भावी कार्य की तैयारी के वर्ष रहे।

सन् 1906 में बंगाल नेशनल कॉलेज की स्थापना हुई। तब बड़ोदरा की लाभप्रद सेवा का त्याग कर चौंतीस वर्षीय श्रीअरविंद उस कॉलेज के प्रथम प्राचार्य बने और खुलकर स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने के लिए वहाँ से भी त्यागपत्र दे दिया। अब वे राष्ट्रीय दल के नेता बन गए और 'वंदे मातरम्' पत्रिका के माध्यम से उन्होंने क्रांति की अलख जगाई। विपिनचंद्र पाल के शब्दों में 'वंदे मातरम्' देश में एक ऐसी शक्ति थी, जिसकी अवहेलना करने का साहस कोई नहीं कर सकता था।

श्रीअरविंद इसकी मार्गदर्शक आत्मा और केंद्रीय प्रतीक बने। तत्कालीन ब्रिटिश वायसराय लार्ड मिन्टो श्रीअरविंद को सबसे अधिक खतरनाक व्यक्ति मानते थे, वहीं देशबंधु चितरंजनदास उन्हें देशप्रेम का कवि, राष्ट्रीयता का पैगंबर और मानवता का प्रेमी कहते थे। चार वर्ष से भी कम समय में श्रीअरविंद ने मंद एवं प्रभावशून्य नीति पर चल रही कांग्रेस में क्रांति ला दी और स्वतंत्रता संग्राम में पूर्ण स्वराज्य का लक्ष्य जोड़कर स्वाधीनता आंदोलन को नई दिशा दी।

उनकी क्रांतिकारी गतिविधियों के कारण भयभीत अँगरेजी सरकार ने उन्हें अलीपुर जेल में बंदी बनाकर रखा। श्रीअरविंद ने उस कारागार को ही गहन स्वाध्याय, साधना एवं ध्यान की तप:स्थली बना डाला और इस दौरान भगवान का साक्षात्कार किया। यहाँ से प्राप्त दैवी निर्देशानुसार स्वयं को बृहत्तर आध्यात्मिक लक्ष्य के लिए समर्पित कर वे पांडिचेरी चले गए।

उन्हें आभास हो चुका था कि भारत की राजनीतिक स्वाधीनता सुनिश्चित है और उनकी प्रत्यक्ष राजनीतिक भूमिका पूर्ण हो गई है। आश्चर्य नहीं कि श्रीअरविंद के पचहत्तरवें जन्मदिवस पर 15 अगस्त, 1947 को भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। इस उपलक्ष्य पर श्रीअरविंद का संदेश था—'मैं इस संयोग को आकस्मिक दैवयोग नहीं मानता, बल्कि उस दिव्यशक्ति की मुहर और स्वीकृति मानता हूँ, जो मेरे चरणों को राह दिखाती है और उस काम को मुहर लगाती है; जिसके साथ मैंने अपना काम प्रारंभ किया था।'

महर्षि अरविंद को दृढ़ विश्वास था कि आध्यात्मिकता भारतीय मन की सर्वकुंजी है और अनंत का भाव उसमें जन्मता है। साथ ही अपने समस्त वैभव, गहराई और पूर्णता के साथ प्राचीन आध्यात्मिक ज्ञान और अनुभूति की पुन:प्राप्ति उसका पहला व सबसे महत्त्वपूर्ण काम है। दर्शन, साहित्य, कला, विज्ञान और आलोचनात्मकता में इस आध्यात्मिकता का नए रूप में खिलना दूसरा चरण है। आधुनिक समस्याओं के साथ मौलिक व्यवहार करना और आध्यात्मिक भावापन्न समाज में समन्वय को सूचीबद्ध करने का प्रयास तीसरा और सबसे कठिन चरण है।

इन तीनों दिशाओं में सफलता मानव जाति के भविष्य के लिए सहायता का भाव होगी—ऐसा उन्हें विश्वास था। इस तरह श्रीअरविंद का कार्य केवल भारत की स्वाधीनता के लिए युद्ध करने तक सीमित नहीं था, बल्कि यह भारत के उत्थान के लिए आवश्यक पहल करना था, ताकि वह अपने आप को पा सके एवं अपनी नियति को पूर्ण कर सके।

उनका भाव था कि भारत, विश्व के देशों में अपना न्यायसंगत स्थान पा सके, जो मानव जाति को घेरे हुए असाध्य-सी प्रतीत होने वाली समस्याओं के समाधान निकाल सके और आ यात्मिक तथा भौतिक जीवन में समन्वय ला सके। इस प्रकार श्रीअरविंद जीवनभर भारत की पुन:स्थापना एवं मानव चेतना के परिवर्तन के लिए कार्य करते रहे।

इन्हीं महत्तर उद्देश्यों के साथ श्रीअरविंद ने पांडिचेरी में आध्यात्मिक साधना के साथ मानव जाति को उज्ज्वल भविष्य का प्रकाश देने वाले साहित्य का सृजन किया और दिव्य जीवन योग समन्वय, मानव चक्र, मानव एकता का आदर्श, भारतीय संस्कृति के आधार, वेद, उपनिषद् एवं

साधना का अर्थ है—कठिनाइयों से संघर्ष करते हुए भी सत्प्रयास जारी रखना।

गीता पर भाष्य लिखकर सावित्री जैसे कालजयी साहित्य का अवदान दे गए। सन् 1920 में श्रीमाँ इनके आध्यात्मिक अभियान में आ जुड़ीं और दोनों के सम्मिलित साधनात्मक प्रयासों से श्रीअरविंद आश्रम की स्थापना हुई।

श्रीअरविंद के अनुसार समस्त जीवन ही योग है। जीवन की उच्चतम संभावनाओं को सचेतन विकास के माध्यम से मूर्तरूप दिया जाता है, जिसको उन्होंने अतिमानस का नाम दिया। अंतिम समय तक श्रीअरविंद मानव शक्ति में दिव्य जीवन के इस कार्य को चरितार्थ करने में साधनारत रहे और सन् 1950 में उनके देहत्याग के बाद श्रीमाँ ने इस कार्य को आगे बढ़ाया। निस्संदेह महर्षि अरविंद का विलक्षण व्यक्तित्व, कालजयी साहित्य एवं दिव्य जीवन अभीप्सु साधकों को उच्चतर जीवन की सबल प्रेरणा देता है और साथ ही वहीं अंधकार, अनिश्चितता एवं निराशा के दौर से गुजर रहे समाज, राष्ट्र एवं विश्वमानव को इस ओर बढ़ने की राह हेतु प्रखर मार्गदर्शन करता है। ❑

वायु-प्रदूषण का कहर

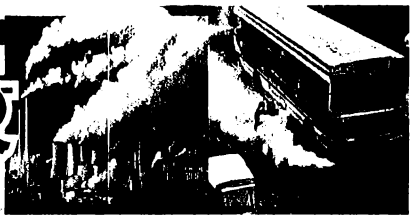

वायु अगर स्वच्छ व प्राणवान है, तो हमारा जीवन भी स्वस्थ व दीर्घायु होता है और अगर वायु प्रदूषित है, तो हमारा जीवन भी इसके प्रदूषण के कारण शीघ्र रोगग्रस्त व अल्पायु होता है।

जिस तरह से आज स्वच्छ जल के अभाव में 'मिनरल वाटर' का व्यापार तेजी से चारों ओर फैला दिखता है और सुगमता से इसे कहीं से भी खरीदा जा सकता है; उसी तरह से वायु-प्रदूषण के कारण स्वच्छ वायु के विक्रय होने की भी शुरुआत हो रही है और इसके लिए 'विटेलिटी एयर' नाम का स्टार्टअप भारत में 'कैंड ऐयर' बेचने की तैयारी कर रहा है; क्योंकि दिल्ली जैसे शहरों में आज खुलकर श्वास लेना भी कठिन होता जा रहा है।

दो वर्ष पूर्व हुए एक अध्ययन के अनुसार—संक्रमण से होने वाली अप्राकृतिक मृत्यु में वायु-प्रदूषण एक प्रमुख कारण है। वायु-प्रदूषण की भयंकरता इसी तथ्य से आँकी जा सकती है कि दिसंबर, 1952 में घटित लंदन के 'ब्लैक फॉग' (काला कोहरा) ने लगभग 4,000 व्यक्तियों की जान ली थी। इसका कारण सल्फर-डाइऑक्साइड गैस रही। इसी प्रकार भारत में दिसंबर, 1984 में भोपाल गैस कांड, जिसमें यूनियन कार्बाइड कारखाने में 40 हजार किलोग्राम मिक (मिथाइल आइसोसाइनेट) गैस के रिसाव से तत्काल लगभग 2500 व्यक्ति मौत के मुँह में समा गए और आज भी हजारों इससे प्रभावित हैं।

उपरोक्त तथ्यों के अतिरिक्त कुछ प्रदूषण ऐसे भी होते हैं, जो हमारी दैनिक क्रियाओं व घरों से जुड़े होते हैं, जो सुनने में कुछ विशेष नहीं लगते, पर परोक्ष रूप से स्वास्थ्य के लिए घातक सिद्ध होते हैं, जैसे—

'एनवायरमेंटल साइन्स एंड टेक्नोलॉजी' नामक जर्नल में प्रकाशित एक शोध के अनुसार—घरों में जमी धूल पर भी कई प्रकार के विषैले तत्त्व पाए जाते हैं, जो मनुष्य में कैंसर से लेकर प्रजनन तक की परेशानियाँ पैदा कर सकते हैं।

विगत दिनों हुए एक शोध के अनुसार—घर के अंदर सामान, फर्श और दीवारों पर जमी धूल में घातक रसायन पाए गए। इन रसायनों में आग बुझाने वाले 'फ्लेम रिटार्डेंट्स फीनॉल', इत्र को सुगंधित बनाने वाले रसायन जैसे खतरनाक रसायन मिले, जो हवा में मिलकर पुन: धूल के साथ घरेलू वस्तुओं पर एकत्र हो गए। स्मार्ट फोन, खाद्य पदार्थों के डिब्बे, टी.वी. रिमोट व अन्य सामानों में भी खतरनाक रसायन पाए जाते हैं और लगातार इनके संपर्क में रहने से हमारी हॉर्मोन प्राणाली, शारीरिक-विकास, पाचन-क्रिया और रोग-प्रतिरोधक क्षमता कमजोर हो रहे हैं—जिसे हम पूरी तरह से स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं।

इसी तरह से बच्चों के प्लास्टिक के खिलौनों, खाद्य पदार्थों के लिफाफों और पर्सनल केयर प्रोडक्ट में भी घातक रसायन पाए जाते हैं, इनके संपर्क में अधिक रहने से बच्चों के बचपन पर खतरा बढ़ रहा है। देखा जाए तो सामान्य वायु-प्रदूषण से आँखों में जलन, खाँसी, दमा, फेंफड़े का कैंसर, ब्रॉन्काइटिस, हृदय रोग आदि हो जाते हैं।

अगर बाहरी प्रदूषण के खतरों की बात की जाए तो लगभग 40 फीसदी स्ट्रोक के मामले, 40 फीसदी हृदय रोग, 11 फीसदी प्रतिरोधक क्षमता से जुड़े रोग, 0.6 फीसदी फेंफड़ों का कैंसर तक इसके कारण पाए गए। समय के अनुसार—ये आँकड़े घटते-बढ़ते भी रहते हैं।

वायु-प्रदूषण के प्रमुख कारणों में से एक विश्व की बढ़ती जनसंख्या द्वारा प्राकृतिक संसाधनों का अधिक-से-अधिक उपयोग है। औद्योगिकीकरण से बड़े-बड़े शहर आज बंजर बनते जा रहे हैं, इसलिए स्वच्छ वायु से भी हम दूर होते जा रहे हैं, फिर भी दुनिया में कई शहर एवं देश ऐसे भी हैं, जिन्होंने तकनीकी के द्वारा प्रदूषण के विरुद्ध प्रभावी उपाय किए हैं और इनके द्वारा अपनाए गए तरीके अन्य देशों के लिए एक अनुकरणीय उदाहरण हैं।

बीजिंग में नवंबर, 2015 में वहाँ की वायु सामान्य से 30 गुना अधिक विषैली हो गई थी। दिसंबर, 2015 में

चीन ने पहली बार रेड अलर्ट जारी करके सबसे पहले स्कूल बंद करवाए, फिर उद्योगों, निर्माणकार्यों और वाहनों पर जुर्माना राशि कई गुना बढ़ा दी। 1500 से अधिक स्थानों पर एयर रिपोर्टिंग सिस्टम (हवा जाँचने का यंत्र) लगाकर हर घंटे हवा में प्रदूषण का स्तर मापकर इसे ऑनलाइन जारी किया, ताकि वायु-प्रदूषण कम-से-कम हो सके।

गत वर्ष दिसंबर में इटली का मिलान शहर वायु-प्रदूषण की दृष्टि से बहुत प्रदूषित रहा। ऐसी परिस्थितियों में जब वहाँ लोगों को साँस लेने में भी तकलीफ होने लगी—तब वहाँ की सरकार ने सप्ताह में चार दिन प्रात: 10 बजे से सायं 4 बजे तक निजी वाहनों को प्रतिबंधित कर दिया। इटली के अन्य शहर रोम में भी वाहनों के लिए सम-विषम का फार्म्यूला लागू किया गया व साइकिल के उपयोग पर अधिक बढ़ावा दिया गया।

सन् 1952 में लंदन, ब्रिटेन में पाँच दिनों तक प्रदूषणवाली जहरीली हवाएँ चलती रहीं। इसके चलते लगभग 4000 लोगों की जानें गईं। अत: सन् 1956 में 'क्लीन एयर ऐक्ट' लागू किया गया, जिसके अंतर्गत उद्योगों और वाहनों से काले धुएँ के उत्सर्जन पर प्रतिबंध लगाया गया।

सन् 1948 में पेंसिलवेनिया, अमेरिका में 20 लोगों की मृत्यु प्रदूषित हवाओं के कारण हुई। इसके कारण 6 हजार से अधिक लोग बीमार हुए, इसलिए सन् 1970 में वहाँ 'एनवायरमेन्टल बिल ऑफ राइट्स' लागू किया गया, जिसके अंतर्गत प्रदूषण फैलाने वाले कारकों पर लगाम लगाई गई और लोगों को प्रदूषण से लड़ने के अधिकार दिए गए।

मार्च 2015 में पेरिस (फ्रांस) में प्रदूषण का स्तर अत्यधिक बढ़ गया था, इसलिए यहाँ और इससे सटे लगभग 22 क्षेत्रों में वाहनों के लिए सम-विषम लागू किया गया। इससे सड़कों पर आधी गाड़ियाँ कम हो गईं और प्रदूषण भी कम हुआ, साथ ही साइकिल के उपयोग पर बढ़ावा भी दिया गया।

आज पर्यावरण और परिवेश में छाए प्रदूषण पर प्रहार करने के लिए कुछ अन्य प्रयास भी किए जा रहे हैं, जैसे—

हवाशोधक बल्ब यानी एयर प्यूरिफायर बल्ब—ये बल्ब घर के अंदर उपस्थित प्रदूषक तत्त्वों को धरती पर एकत्र कर देते हैं, जिन्हें फिर आसानी से साफ किया जा सकता है।

प्रकाश उत्प्रेरक पदार्थ—यह विशेष पदार्थ सूर्य की रोशनी के साथ प्रतिक्रिया करके वातावरण से प्रदूषक तत्त्वों को हटाने में सहायता करता है। विश्व में कई कंपनियाँ इस पर शोधकार्य कर रही हैं। ब्रिटिश संस्था 'एनवायरमेन्टल कमीशन' की रिपोर्ट के अनुसार—इस पदार्थ को अगर सड़कों पर लगाया जाए, तो इसके कई लाभ होंगे।

जीटीएल ईंधन (गैस टू लिक्विड फ्यूल)— यह ईंधन डीजल का विकल्प कहा गया है। प्राकृतिक गैस से रिफाइनरी प्रणाली के माध्यम से तरल रूप में यह प्राप्त होता है। इसका परीक्षण कर यह दावा किया गया है कि इसके प्रयोग से नाइट्रोजन ऑक्साइड का उत्सर्जन 5-37 फीसद और प्रदूषक अभिकणों (पीएम 2.5 और पीएम 10) का उत्सर्जन 10-38 फीसद घटा।

वायु-प्रदूषण को कम करने के लिए कुछ कदम सार्वजनिक रूप से लागू किए जाने चाहिए, जैसे—कारखानों को शहरी क्षेत्र से दूर स्थापित करना चाहिए, साथ ही ऐसी तकनीक उपयोग में लानी चाहिए, जिसमें धुएँ का अधिकतम भाग अवशोषित हो और अपशिष्ट पदार्थ व गैसें अधिक मात्रा में वायु में न मिल पाएँ। शहरीकरण की प्रक्रिया को रोकने के लिए गाँवों व कस्बों में रोजगार, कुटीर उद्योग व अन्य सुविधाएँ उपलब्ध कराई जानी चाहिए।

वाहनों से उत्सर्जित होने वाले धुएँ को ऐसे समायोजित किया जाए, ताकि वह बाहर कम-से-कम निकले। ऐसे ईंधन की आज आवश्यकता है, जिसका उपयोग करने से उसका पूर्ण ऑक्सीकरण हो जाए व धुआँ कम-से-कम निकले। इसके अतिरिक्त कूड़ा-कचरा, कीचड़ और मल-मूत्र के अपशिष्टों को निकलने से पूर्व व्यवस्थित करना, शहरों व नगरों में अपशिष्ट हेतु सीवरेज व्यवस्था करना, वनों की अंधाधुंध कटाई पर रोक लगाना, वृक्षारोपण अभियान, पाठ्यक्रम में पर्यावरण चेतना जाग्रत अभियान आदि का प्रचार-प्रसार करना चाहिए। वायु को स्वच्छ रखने के लिए जो भी आवश्यक कदम हैं वो हमें अविलंब उठाने चाहिए, ताकि वायु हमें स्वस्थ प्राण व जीवन दे सके। ❑

युगगीता — 245

तेज, क्षमा, धृति और अद्रोह होते हैं दैवी प्रकृति के गुण

(श्रीमद्भगवद्गीता के दैवासुरसम्पद्विभाग नामक सोलहवें अध्याय की तीसरी किस्त)

[विगत किस्त में श्रीमद्भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय के द्वितीय श्लोक की विवेचना प्रस्तुत की गई थी। इस श्लोक में श्रीभगवान दैवी संपदा वाले व्यक्तियों के गुणों की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, वीतरागता, चुगली न करना, सांसारिक विषयों के प्रति न ललचाना, अंतःकरण की कोमलता, अकर्त्तव्य करने में लज्जा तथा चपलता का अभाव—ये सभी दैवी गुणों की परिभाषा कहे जा सकते हैं। अहिंसा को वे इस शृंखला में सबसे प्रथम सूत्र के रूप में लेते हैं। सच पूछें तो अहिंसा हमारा मूल स्वभाव है एवं हिंसा आविष्कृत है। इसीलिए व्यक्ति के लिए जीवनभर अहिंसा का अनुशीलन संभव है, परंतु हमारे लिए जीवनभर हिंसा कर पाना संभव नहीं है। महावीर, बुद्ध, एवं गांधी बन पाना हमारे लिए संभव है, परंतु बुरे-से-बुरे व्यक्ति के लिए भी चौबीसों घंटे क्रोधित रह पाना संभव नहीं है। यदि दूसरे को दुःख, पीड़ा देने का भाव हमारे अंतःकरण में न हो तो सच्ची अहिंसा जन्म लेती है। मात्र हिंसा न करना ही अहिंसा नहीं है, वरन हृदय से उस भाव का विदा हो जाना ही सही दृष्टि से अहिंसा है।

अहिंसा के बाद भगवान श्रीकृष्ण दूसरे दैवी गुण के रूप में सत्य को बताते हैं। सत्य का अर्थ भी मात्र सत्य बोलना नहीं, वरन सत्याचरण करना है। उसके बाद अक्रोध का नाम आता है। अक्रोध का अर्थ आत्मिक आनंद से है, हृदय से किसी भी तरह के क्रोध के कारण के त्याग से है। ऐसा मात्र तब ही संभव है, जब हम जीवन की समस्त घटनाओं को परमात्मा के अनुग्रह रूप में स्वीकार करें। ऐसे व्यक्ति के अंदर जिसमें अहिंसा, अक्रोध, सत्य आ चुके हैं; एक नैसर्गिक शांति जन्म लेती है। ऐसा व्यक्ति फिर न दूसरे के दोष देखता है, न उसकी चुगली करता है। उसके मन में सबके प्रति समान करुणा का भाव होता है, कठोरता का अभाव होता है, शास्त्रोक्त आचरण के विरुद्ध कर्म कर पाना उसके लिए संभव नहीं हो पाता तथा उसमें प्रमाद का पूर्णरूपेण अभाव होता है। ये सभी गुण दैवी वृत्तियों के प्रतीक हैं।]

इतना कहने के बाद श्रीभगवान कहते हैं कि—

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत॥ 3॥

शब्दविग्रह—तेजः, क्षमा, धृतिः, शौचम्, अद्रोहः, नातिमानिता, भवन्ति, सम्पदम्, दैवीम्, अभिजातस्य, भारत।

शब्दार्थ—तेज (**तेजः**), क्षमा (**क्षमा**), धैर्य (**धृतिः**), बाहर की शुद्धि एवं (**शौचम्**), किसी में भी शत्रुभाव का न होना और (**अद्रोहः**) अपने में पूज्यता के अभिमान का अभाव ये सब तो (**नातिमानिता**), हे अर्जुन! (**भारत**), दैवी संपदा को (**दैवीम्, सम्पदम्**), लेकर उत्पन्न हुए पुरुष के (लक्षण) (**अभिजातस्य**), हैं (**भवन्ति**)।

अर्थात—तेज, क्षमा, धैर्य, शुचि, वैरभाव का अभाव, मान की चाह का न होना—हे भरतवंशी अर्जुन! ये सभी दैवी संपदा को प्राप्त हुए मनुष्यों के लक्षण हैं। विगत दो श्लोकों में दैवी संपदा वाले मनुष्यों के लक्षणों को बताने के उपरांत भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि दैवी संपदायुक्त व्यक्ति में जो एक और गुण होता है, वो तेज की उपस्थिति का होता है। परमपूज्य गुरुदेव से मिलने वाले परिचित हैं कि उनकी आँखों व चेहरे पर एक विलक्षण प्रकार का तेज होता था

एवं उनकी आँखों से तपस्या का तेज इस तरह से निस्सृत होता रहता था कि उनकी आँखों-से-आँखों को मिलाकर बात कर पाना भी संभव ही न हो पाता था। दैवी संपदा से युक्त व्यक्तियों के मुखमंडल पर कुछ ऐसा ही तेजोवलय उपस्थित होता है।

तेज के साथ दूसरा गुण भगवान श्रीकृष्ण क्षमा के रूप में बताते हैं। यदि किसी ने ऐसे व्यक्ति के प्रति कोई अपराध किया भी हो तो ऐसे दैवी गुणों से युक्त महापुरुषों में उनके प्रति कोई आक्रोश या प्रतिशोध का भाव नहीं होता, वरन वे तब भी उनके भले के लिए ही सोचते हैं तथा प्रयत्न करते हैं।

इसी भाव को दरसाती एक कथा आती है। एक बार एक व्यक्ति नदी के किनारे बैठे हुए एक संत को ध्यान से देख रहा था। वह संत पानी में बहते एक केंकड़े को नदी की तेज धार में बहने से बचाने का प्रयत्न कर रहे थे। उस आदमी ने देखा कि जितना वे संत उस केंकड़े को बचाने का प्रयत्न करते, उतना ही वह केंकड़ा उन पर हमला करने की कोशिश करता। केंकड़े के बारंबार आघात पहुँचाने से उनकी उँगलियों से रक्त बहने लगा। उनका हाथ लहूलुहान हो उठा।

यह दृश्य देखकर नदी किनारे बैठा वह व्यक्ति संत के पास पहुँचा एवं उनसे बोला कि आप क्यों इस केंकड़े को बचाने का इतना प्रयत्न कर रहे हैं? इस जीव का तो स्वाभाविक धर्म ही आघात पहुँचाना है। संत ने उस केंकड़े के आघातों को सहते हुए उसे किनारे लाकर रखा और बोले—"उसका धर्म यदि क्रोध करना है तो मेरा धर्म क्षमा करना है।" दैवी गुणों से संपन्न व्यक्ति, इसी तरह से हर व्यक्ति के प्रति सहृदयता का भाव रखते हैं। अपने प्रति अपराध करने वाले को भी किसी भी प्रकार का दंड न दिलाने का भाव रखना, उससे किसी भी प्रकार का बदला न लेने का भाव रखना तथा उसके अपराधों को अपराध न मानते हुए उसे क्षमा कर देना दैवी संपदा से युक्त मनुष्यों के लक्षण हैं।

तेज एवं क्षमा जैसे गुणों को बताने के बाद श्रीभगवान धैर्य या धृति को दैवी लक्षण बताते हैं। जीवन में भयंकर आपत्ति या विपत्ति को आने से कोई रोक नहीं सकता। ऐसे अनेकों कारण भी मनुष्य के जीवन में उपस्थित होते ही रहते हैं, जो उसे भय या दुःख प्रदान करते हैं। इन सबके प्रहारों के बाद भी आंतरिक दृष्टि से कदापि विचलित न होने का गुण ही धैर्य का गुण है।

जब जीवन में कठिन परिस्थितियाँ आती हैं तो उस समय में धैर्य के आधार पर ही दैवी व्यक्तित्वों की पहचान हो पाती है। महाभारत में कथा आती है कि जब महाभारत युद्ध की समाप्ति पर भगवान श्रीकृष्ण ने सभी से पूछा कि उनकी क्या मनोकामना है, जिसे वे पूरा कर दें तो हरेक ने अलग-अलग चाहतें बताईं, परंतु इस प्रश्न के उत्तर में कुंती भगवान से बोलीं कि यदि भगवान को कुछ देना है तो यह आशीर्वाद दें कि उनके जीवन में विपत्ति सदा बनी रहे। भगवान कृष्ण ने कुंती से पूछा कि इतनी दुष्कर कामना क्यों व्यक्त कर रही हैं? तो कुंती बोलीं कि भगवान! विपत्ति के समय ही मनुष्य के धैर्य की परीक्षा होती है। इसलिए जीवन में से विपत्ति कभी भी विदा नहीं होनी चाहिए। साथ ही वे ये भी बोलीं कि—

आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम्॥

अर्थात—सदाचार से आयु बढ़ती है। इसके द्वारा मनोनुकूल संतानें प्राप्त होती हैं। इससे स्थायी धन मिलता है और यह सभी त्रुटियों को नष्ट कर देता है।

विपदो नैव विपदः सम्पदो नैव सम्पदः।
विपद्विस्मरणं विष्णोः सम्पन्नारायण स्मृतिः॥

अर्थात—विपत्तियाँ सच्ची विपत्ति नहीं हैं और संपत्तियाँ सच्ची संपत्ति नहीं हैं। भगवान को भुला बैठना ही विपत्ति है और भगवान को याद रखना ही सच्ची संपत्ति है। दैवी गुणों से युक्त व्यक्ति ऐसा ही सोचते हैं।

तेज, क्षमा, धैर्य के अतिरिक्त श्रीभगवान शरीर, मन व विचारों की शुचिता, अपने मन में अद्रोह अर्थात अपने साथ शत्रुता का व्यवहार करने वाले के प्रति जरा भी द्वेष या शत्रुता का भाव न होना, मन में मान, अभिमान का अभाव होना, इन सारे गुणों को, सदाचारों को धारण करने वाले को दैवी संपदा से युक्त मानते हैं। इस तरह प्रथम, द्वितीय व तृतीय श्लोकों में श्रीभगवान दैवी प्रकृति से युक्त मनुष्यों के लक्षणों को बताते हैं। (क्रमशः)

स्वाध्याय से सँवारें जिंदगी

स्वाध्याय हम सामान्यतया किसी भी पुस्तक को पढ़ना भर मान लेते हैं और अपने पसंदीदा विषय की पुस्तकों या पत्रिकाओं का पठन करते हैं, किंतु स्वाध्याय के यथार्थ उद्देश्य, महान प्रयोजन और फलश्रुतियों को न समझ पाने के कारण इसे अपने जीवन का अभिन्न अंग नहीं बना पाते।

शास्त्रों में—**स्वाध्यायान्मा प्रमदः** (तैत्तिरीय उपनिषद्) कहकर मानवमात्र के लिए स्वाध्याय को जीवन का अभिन्न अंग बनाने का निर्देश दिया गया है। योग एवं अध्यात्म शास्त्रों में स्वाध्याय को जीवन-साधना का एक प्रमुख स्तंभ माना गया है। श्रीमद्भगवद्गीता में स्वाध्याय को वाणी का तप कहा गया है। छांदोग्य उपनिषद् में स्वाध्याय को धर्म के प्रमुख स्तंभों में एक माना गया है। पातंजल योगसूत्र में स्वाध्याय को क्रियायोग का एक प्रमुख अंग माना है और सतत स्वाध्याय की फलश्रुति को इष्ट की प्राप्ति बताया है।

योग न्यास भाष्य में भी कहा गया है कि योग-साधना के पथ पर स्वाध्याय करने से परमात्मा का साक्षात्कार होता है। शतपथ ब्राह्मण में तो यहाँ तक कहा गया है कि जिस दिन ब्राह्मण (ब्रह्म या ईश्वर की प्राप्ति में संलग्न व्यक्ति) स्वाध्याय नहीं करता, वह अब्राह्मण हो जाता है अर्थात ब्राह्मणत्व से च्युत हो जाता है।

स्वाध्याय के प्रति इन महान धारणाओं में कोई अतिशयोक्ति नहीं है; क्योंकि स्वाध्याय का स्वरूप ही कुछ ऐसा है। स्वाध्याय का अर्थ—स्व का अध्ययन अर्थात **अपने आप का, अपने जीवन का अध्ययन करना है।**

सामान्य मनुष्य दुनियाभर की जानकारी बटोरता रहता है, ज्ञानी-पंडित सर्वज्ञ बनकर फिरता है, लेकिन स्वयं के प्रति उसकी अनभिज्ञता चकित करने वाली होती है। स्वयं का अध्ययन प्रायः व्यक्ति की प्राथमिकता में नहीं होता। इस कारण अनेकों का जीवन तमाम तरह के दुःख, क्लेश, समस्याओं, विग्रहों एवं द्वंद्वों से आक्रांत रहता है।

इस सुरदुर्लभ मानव जीवन का मूल उद्देश्य क्या है? इस उद्देश्य की पृष्ठभूमि में वह खड़ा कहाँ है? इस तक पहुँचने का मार्ग क्या है? इस मार्ग के आंतरिक एवं बाह्य व्यवधान क्या हैं? इन सब महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर व्यक्ति को स्वाध्याय के प्रकाश में ही मिलते हैं। श्रेष्ठ ग्रंथों एवं अधिकारी मनीषियों द्वारा रचित साहित्य के साथ व्यक्ति जब चिंतन-मनन एवं विचार करता है तो उसके विवेकचक्षु जाग्रत होते हैं। आंतरिक जीवन के अँधेरे कोनों में प्रकाश की किरणें पड़ती हैं और जीवन का प्रकाशपूर्ण मार्ग प्रशस्त होता है।

स्वाध्याय का यह लाभ पाने हेतु उचित साहित्य का चयन अभीष्ट होता है, तभी स्वाध्याय का यथार्थ प्रयोजन पूरा होता है और इससे जुड़ी फलश्रुतियाँ एक-एक कर अनावृत होने लगती हैं। अधिकांशतः लोग स्वाध्याय के नाम पर इतिहास, पुराण, कथा, काव्य इत्यादि ग्रंथों के पठन तक ही सीमित रहते हैं, जो ज्ञानवर्द्धक होते हुए भी स्वयं के समग्र अध्ययन के उद्देश्य को पूरा नहीं कर पाता।

आजकल स्वाध्याय के नाम पर ऐसे साहित्य को पढ़ने का चलन अधिक है, जो व्यक्तित्व के विकास से लेकर जीवन की सफलता, उन्नति एवं बुलंदियों की बातें करता है। इसमें भी कोई बुराई नहीं है, एक स्तर तक स्वयं को जानने व आगे बढ़ने के लिए ऐसा साहित्य उपयुक्त रहता है, लेकिन स्वाध्याय के मूल प्रयोजन को देखते हुए इसकी भी अपनी सीमाएँ हैं। इनमें प्रायः वह प्रकाश नहीं मिल पाता, जो जीवन की आत्यांतिक समस्याओं एवं महाप्रश्नों के मर्म को छू सके।

स्वाध्याय के लिए सबसे उपयुक्त रहता है—उन प्राज्ञपुरुषों द्वारा रचित साहित्य को पढ़ना; जिनका स्वयं का जीवन देदीप्यमान सूर्य की भाँति युग को आलोकित किए होता है। इस युग में स्वामी दयानंद, स्वामी विवेकानंद, स्वामी रामतीर्थ, महर्षि अरविंद, स्वामी शिवानंद एवं परमपूज्य गुरुदेव पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जैसे महायोगी-महर्षियों के साहित्य में ऐसा प्रकाशपूर्ण मार्गदर्शन उपलब्ध होता है। श्रीमद्भगवद्गीता, वेद, पुराण, उपनिषद्, रामचरितमानस, पातंजल योगसूत्र, विवेक चूड़ामणि जैसे आध्यात्मिक ग्रंथों

से भी जीवन के मूल प्रश्नों के समाधान मिलते हैं व ये भी स्वाध्याय के प्रयोजन को पूरा करते हैं।

युगऋषि पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य द्वारा रचित विपुल युगसाहित्य भी ऐसा प्रखर मार्गदर्शन प्रदान करने में सक्षम है। इस युग में उनके द्वारा प्रवर्तित एवं प्रेरित अखण्ड ज्योति पत्रिका को स्वाध्याय में सम्मिलित किया जा सकता है। इसके कई विशेषांक जो पुस्तकों के रूप में उपलब्ध हैं जैसे—शिष्य-संजीवनी, गुरुगीता, अंतर्जगत की यात्रा का ज्ञान-विज्ञान आदि का भी मनन किया जा सकता है।

अपनी रुचि एवं आवश्यकतानुसार उचित साहित्य का चयन स्वाध्याय के उद्देश्य को पूरा कर सकता है। ऐसे सद्ग्रंथों एवं युगसाहित्य के नित्य अध्ययन का क्रम बनाया जाना चाहिए। उपासना के साथ या शांत-स्थिर मनःस्थिति में पूर्ण एकाग्रता एवं श्रद्धा के साथ किया गया स्वाध्याय मानव जीवन के मूल उद्देश्य को उजागर करता है, जिससे साधक नित्यप्रति आत्मसाधना की आवश्यकता को पूरा होता देख सकता है। इसीलिए स्वाध्याय की महिमा शास्त्रों में वर्णित है। ❑

एक नवयुवक एक सिद्ध महात्मा के आश्रम आया करता था। महात्मा उसकी सेवा से प्रसन्न होकर बोले—''बेटा! आत्मकल्याण ही मनुष्य जीवन का सच्चा लक्ष्य है और इसे ही पूरा करना चाहिए।'' यह सुनकर युवक ने कहा—''महाराज! वैराग्य धारण करने पर मेरे माता-पिता कैसे जीवित रहेंगे? साथ में मेरी युवा पत्नी मुझे अत्यंत प्रेम करती है। वह मेरे वियोग में मर जाएगी।'' महात्मा बोले—''कोई नहीं मरेगा बेटा! यह सब दिखावटी प्रेम है। तू नहीं मानता तो परीक्षा ले ले।''

युवक राजी हो गया तो महात्मा ने उसे देर तक साँस रोकना सिखाया। युवक ने घर जाकर वही किया। घरवाले उसे मरा समझकर हो-हल्ला मचाने लगे और पछाड़ें खाने लगे। पड़ोस के बहुत से लोग इकट्ठे हो गए। तभी महात्मा जी वहाँ पहुँचे और बोले—''हम इस लड़के को जीवित कर देंगे, पर तुम लोगों को कुछ त्याग करना पड़ेगा।''

घरवाले बोले—''हम सब करने को तैयार हैं, आप इसे जीवित कर दें।'' महात्मा बोले—''एक कटोरा दूध लाओ।'' तुरंत आज्ञा का पालन हुआ। महात्मा जी ने उसमें एक चुटकी भस्मी डाली, एक मंत्र पढ़ा और बोले—''जो कोई इस दूध को पी लेगा, वो मर जाएगा और यह युवक जीवित हो जाएगा।''

अब समस्या हुई कि दूध कौन पिएगा। माता-पिता बोले—''कहीं वो जीवित न हुआ तो एक और जान व्यर्थ में जाएगी।'' पत्नी बोली—''इस बार जीवित हो जाएँगे तो क्या, कभी तो मरेंगे।'' अब महात्मा बोले—''अच्छा मैं ही इस दूध को पी लेता हूँ।'' सभी लोग प्रसन्न होकर बोले—''महाराज! आप धन्य हैं। साधु-संतों का जीवन ही परोपकार के लिए है।'' महात्मा ने दूध पी लिया और युवक को बोले—''उठ बेटा! ज्ञान हो गया कि कौन तेरे लिए प्राण देता है।'' युवक उठा और तुरंत आत्मकल्याण की साधना हेतु निरत हो गया।

सेवा और संवेदना का प्रतीक है नारी

नारी और पुरुष एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों एकदूसरे के बिना अधूरे हैं। नारी और पुरुष जीवनरूपी गाड़ी के दो पहिये हैं; जिनमें सामंजस्य होने पर ही वह गाड़ी सरपट दौड़ पाती है। यदि एक पहिया बड़ा और दूसरा छोटा कर दिया तो गाड़ी में आए असंतुलन की हम कल्पना ही कर सकते हैं। शिक्षा जीवन के लिए परम आवश्यक है, चाहे वह पुरुष हो या नारी। नारी को शिक्षा से वंचित करके हम उसे विकास के अवसरों से वंचित कर देते हैं, जो कदापि उचित नहीं है।

भारतीय समाज में नारी को अनेक दृष्टियों से सम्मानजनक स्थान दिया गया है। फिर भी भारतीय नारी की स्थिति अत्यंत दयनीय ही रही है। पुरुषों ने नारियों को उनके अधिकारों से वंचित रखा तथा उन पर अत्याचार किया है। आधुनिक युग में नारी अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो गई है। उसमें नारी चेतना का प्रादुर्भाव हुआ है। देश के अनेक समाज सुधारकों, कुछ साहसी महिलाओं के नियोजित एवं संगठित प्रयासों के फलस्वरूप नारियों की दशा में कुछ सुधार संभव हो पाया है।

भारतीय समाज में नारी की भूमिका को अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण माना है तथा उसे उच्च स्थान प्रदान किया गया है। उसे देवी के रूप में मानते हुए यहाँ तक कहा गया है—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।
अपूजिताश्च यत्रैताः सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

अर्थात—जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता आनंदपूर्वक निवास करते हैं और जहाँ इनका अनादर होता है, वहाँ सभी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं। नारी की पूजा का अर्थ है—नारी की स्वतंत्रता। उसको प्राप्त संपूर्ण अधिकार तथा गुणों की संपन्नता की यह सूचक है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जहाँ नारी स्वतंत्र है, वहाँ संपन्नता सुनिश्चित है। एक नारी ही गृहस्थी को उचित प्रकार से चला सकती है। संतान का पालन-पोषण करने, अपने त्याग, धैर्य, परिश्रम, प्रेम, स्नेह, ममता एवं हर प्रकार के घर के वातावरण को जीवंत एवं प्रगतिशील बनाने की दिशा में नारी का विशेष महत्त्व होता है। एक माँ, पत्नी व पुत्री के रूप में वह अनेक दायित्वों का निर्वहन करती है। नारी ही अपनी गृहस्थी को ठीक प्रकार से चला पाती है।

प्राचीन समय में नारी का स्थान बहुत ही सम्माननीय था। स्त्री के बिना कोई भी यज्ञ अपूर्ण माना जाता था। उसे शिक्षाप्राप्ति, शास्त्रार्थ और अपने विभिन्न कौशलों का विकास करने की स्वतंत्रता प्राप्त थी। सीता, सावित्री, शकुंतला, गार्गी आदि श्रेष्ठ नारियाँ इसी काल से संबंधित हैं। मध्यकाल में नारी की स्थिति दयनीय एवं चिंतनीय हो गई। उसे हेय दृष्टि से देखा जाने लगा। उसका कार्यक्षेत्र केवल घर की चहारदीवारी ही रह गया। अशिक्षा, बाल विवाह, सती प्रथा आदि अनेक कुरीतियों के फलस्वरूप नारी का जीवन नारकीय हो गया।

मध्यकाल आते-आते नारी का स्थान पुरुषों की स्वार्थपरता, काम-लोलुपता आदि के कारण न केवल गिर गया, बल्कि उसके अधिकारों पर कुठाराघात भी होने लगा और उसका कार्यक्षेत्र सीमित हो गया। साहित्यकार भी नारी को दोषों की खान के रूप में देखने लगे थे। आधुनिककाल आते-आते नारी स्वातंत्र्य का बिगुल बज उठा।

स्वामी दयानंद के आर्य समाज ने नारी शिक्षा का मंत्र फूँका, राजा राममोहन राय ने सतीप्रथा रुकवाई, महात्मा गांधी ने नारी उत्थान का नारा दिया। अनेक समाजसेवी व्यक्तियों ने पतित अबलाओं, अपहृताओं और वेश्याओं का उद्धार किया। सरकार ने भी संविधान द्वारा नारी को शिक्षा प्राप्त करने, नौकरी करने आदि के समान अधिकार और अवसर प्रदान किए। महिला सुधार हेतु नारी निकेतन खोल दिए गए।

आज की नारी स्वतंत्र है। सत्ता की कुरसी हो अथवा खेल का मैदान, वैज्ञानिक अनुसंधान की प्रयोगशाला हो अथवा कला-साहित्य का संसार, आज नारी के लिए प्रत्येक क्षेत्र का द्वार पूर्ण रूप से खुला है। आज की नारी डॉक्टरी, इंजीनियरिंग, अध्यापन आदि क्षेत्रों में तो लगी ही है साथ ही वह पुलिस, रक्षा विभागों आदि में भी उच्च पदस्थ है।

किरण बेदी (आईपीएस), बछेंद्री पाल (पर्वतारोहण), कल्पना चावला (अंतरिक्ष यात्री) उच्च स्थान प्राप्त कर चुकी हैं।

इतिहास साक्षी है कि जब-जब समाज या राष्ट्र ने नारी को अवसर तथा अधिकार दिए हैं, तब-तब नारी ने विश्व के समक्ष श्रेष्ठ उदाहरण ही प्रस्तुत किए हैं। मैत्रेयी, गार्गी, अपाला, विश्वपारा, केशा आदि विदुषी स्त्रियाँ शिक्षा के क्षेत्र में अपने बहुमूल्य योगदान के लिए आज भी पूजनीय हैं। आधुनिककाल में महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान, महाश्वेता देवी, कृष्णा सोभती, अमृता प्रीतम आदि स्त्रियों ने साहित्य, समाज तथा राष्ट्र की प्रगति में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

रजिया सुल्तान, लक्ष्मीबाई, शिरिमाओ भंडारनायके, इंदिरा गांधी, आंग सान सू आदि स्त्रियाँ प्रगति के मार्ग पर संघर्ष और सुनेतृत्व की स्पष्ट मूर्तियों के रूप में स्थापित हुईं। कला के क्षेत्र में एम. एस. सुब्बुलक्ष्मी, लता मंगेशकर, देविका रानी, बैजंती माला, सुधा चंद्रन, सोनल मानसिंह, मीरा नायर आदि स्त्रियों का योगदान वास्तव में प्रशंसनीय है। इसके अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों जैसे—चिकित्सा, अभियांत्रिकी, बैंकिंग, प्रशासन आदि में भी स्त्रियाँ सक्रिय तथा विकासोन्मुखी भूमिका निभा रही हैं।

नारी का संबंध दो परिवारों से होता है। एक ओर तो पिता के घर में रहकर अपने व्यक्तित्व से परिवार को प्रभावित करती है तो दूसरी ओर ससुराल में जाकर अपने व्यक्तित्व का प्रभाव वह वहाँ पर भी डालती है। यदि नारी पढ़ी-लिखी जागरूक, सचेत है तो वह दोनों कुलों को पवित्र करती है। नारी संतान को जन्म देती है और उसको संस्कारित करती है।

नारी को ही भावी पीढ़ी को सँवारने का पूरा अवसर मिलता है। स्पष्ट है कि पढ़ी-लिखी नारी इस दिशा में जो कार्य कर सकती है, वह अशिक्षित नारी नहीं कर सकती। शिक्षित नारी अपने पैरों पर खड़ी होकर समाज का एक उपयोगी अंग बनती है। उसमें आत्मविश्वास आता है तो वह अन्याय और अत्याचार को चुपचाप सहन करना छोड़ देती है। स्त्री को आर्थिक रूप से स्वतंत्र तभी बनाया जा सकता है, जब वह पढ़-लिखकर योग्य बने। जागरूक शिक्षित लड़कियाँ समाज के हर क्षेत्र में अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह कर रही हैं। वे पुरुषों से किसी प्रकार कम नहीं हैं तथा आज उच्च पदों को सुशोभित कर रही हैं।

संघर्ष के पथ पर चलकर सफलता के शिखरों को चूमने वाली महिलाओं का जीवन हम सभी के लिए एक प्रेरणास्रोत के रूप में है। इनके जीवन से प्रेरणा को प्राप्त कर हम भी अपने जीवन को महान उद्देश्यों की प्राप्ति में निरत कर सकते हैं। कहते हैं कि ताली दोनों हाथों से ही बजती है। नारी परिवार की धुरी है, उसका परिवार के सभी सदस्यों द्वारा सम्मान अवश्य किया जाना चाहिए, परंतु घर के प्रति नारी के भी कुछ महत्त्वपूर्ण दायित्व हैं; जिनकी पूर्ति उसे करनी चाहिए।

दिनभर का थका-हारा व्यक्ति अपनी पत्नी और बच्चों से स्नेह और आत्मीयता की आशा रखकर घर पहुँचता है। सोचता है कि घर पहुँचते ही पत्नी उसका स्वागत करेगी, कुछ स्नेह प्रकट करेगी, उसके दु:ख को सुनकर कुछ प्रबोध देगी, धैर्य बँधाएगी तो कुछ सांत्वना मिलेगी। थके हुए व्यक्ति को यदि थोड़ी सांत्वना मिल जाती है तो उसकी सारी थकान दूर हो जाती है। इसी प्रकार पत्नी के प्यार से पति की सारी बेचैनी दूर हो जाती है।

जीवनसाथी, चिर-सहचर होने के नाते एक के दु:ख-दरद दूसरा बँटाए और उसकी पीड़ा को अपनी पीड़ा समझकर कुछ सेवा-शुश्रूषा करे तो घर स्वर्ग के समान सुंदर और सुखदायी लगेगा ही। समर्पण नारी का बड़प्पन है, इससे उसे सम्मान भी मिलता है और प्रेम भी। सारा परिवार जो सुख से भरा-पूरा रहता है, वह स्त्री-पुरुषों की समझदारी एवं प्रेम से ही संभव है। नारी सेवा और संवेदना की जीवंत प्रतिमूर्ति है। अत: हमें नारी को उचित सम्मान एवं श्रेय देना चाहिए। ❑

भगवान बुद्ध से वासवदत्ता ने पूछा—"समाज में नारियों को उचित सम्मान दिलाए जाने के लिए क्या करना आवश्यक होगा?" भगवान बुद्ध बोले—"समाधान एक ही है कि नारियाँ गुण-सौंदर्य बढ़ाएँ, आभूषण नहीं।"

परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी—1

गायत्री की पंचकोशी साधना

(प्रथम किस्त)

परमपूज्य गुरुदेव का जीवन साधनात्मक जीवन जीने वालों के लिए एक उच्चतम आदर्श के रूप में है। न केवल उन्होंने अपने जीवन और व्यक्तित्व के भीतर उन परिवर्तनों को साकार करके दिखाया, जिन्हें हम आध्यात्मिक पुरुषार्थ की अंतिम परिणति मान सकते हैं, वरन उन गूढ़ विषयों को जनसामान्य के लिए भी इतना सहज और सुलभ बना दिया कि उनका मर्म समझकर साधारण-से-साधारण व्यक्ति भी अपने जीवन में असाधारण प्रगति कर सकता है। एक ऐसे ही गुह्य विषय का प्रतिपादन वे अपने इस प्रस्तुत व्याख्यान में करते हुए नजर आते हैं। गायत्री की पंचकोशी साधना अनेक अभीप्सुओं के लिए एक गहन अनुसंधान का विषय रही है। उसके विषय में इतनी ज्यादा जटिल मान्यताएँ उपलब्ध हैं कि सत्य क्या है, यह जान पाना अनेकों के लिए संभव ही नहीं हो पाता। इस उद्‌बोधन में परमपूज्य गुरुदेव उस साधना के समस्त पक्षों को अत्यंत ही सरल भाषा में सभी के लिए उपलब्ध करा देते हैं। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

देवताओं के विषय में मान्यताएँ

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्॥

देवियो, भाइयो! पंचकोशों के संदर्भ में कल मैं आपसे यह चर्चा कर रहा था कि भगवान ने हमारे साथ जो पंचकोश देकर भेजे हैं, वे इतने बड़े समर्थ हैं कि उनकी तुलना देवताओं से की जाए, तो भी कम है। देवताओं के बारे में हमारी बड़ी-बड़ी कल्पनाएँ हैं। देवता हमारे ऊपर प्रसन्न हो जाते हैं, तो पैसा दे देते हैं, धन दे देते हैं, विद्या देते हैं, बुद्धि देते हैं, फल देते हैं, मुक्ति दे देते हैं, बहुत-सी चीजें दे देते हैं। पर देवता रहते कहाँ हैं? देवता कैसे हैं? कुछ मालूम नहीं है। उनका कुछ पता नहीं है। उनका पता नहीं चलता। हिंदुओं के पास तो देवता अनेकों हो सकते हैं। हिंदुओं के अलावा हमारे मुसलमान भाइयों से पूछें कि भाई साहब! हनुमान जी के बारे में आपका क्या ख्याल है? आप तो बेकार की बात करते हैं। हनुमान जी होते, तो हमको क्यों नहीं दिखाई पड़ते? आप हिंदुओं तक ही सीमित क्यों रह जाते? हमारे यहाँ क्यों नहीं आते? सब बेकार की बकवास है।

मित्रो! ईसाई से हमने यह पूछा कि हनुमान जी के बारे में आपका क्या ख्याल है? साहब! हमारी समझ में कुछ नहीं आता। वे न सपने में दिखते हैं, न दिन में दिखते हैं और न रात में दिखते हैं। हम कुछ नहीं जानते। देवताओं के बारे में हम कुछ कह नहीं सकते; क्योंकि हमारी मान्यता है। यह कहाँ तक सही है, कहाँ तक गलत है, हम कुछ कह नहीं सकते। देवताओं के क्रिया-कृत्यों से कहाँ तक फायदा हो सकता है, कहाँ तक नहीं हो सकता—इसमें शक है; क्योंकि हम क्रिया करने वाले लोगों को भी देखते हैं, पुजारियों को भी देखते हैं। पूजा करने वालों को भी देखते हैं, देवताओं को मानने वालों को भी देखते हैं; लेकिन उनके भीतर जब कोई नवीनता दिखाई नहीं पड़ती, कोई विशेषता दिखाई नहीं पड़ती तो निराशा और मायूसी-सी दिखाई पड़ती है और हमारे मन में यह संदेह उत्पन्न होता है कि देवताओं के बारे में जो कहा जाता है, वह सही है या गलत है।

मान्यताएँ नहीं सिद्धांत है अध्यात्म

लेकिन मित्रो! अध्यात्म एक ऐसी विद्या का नाम है, जो साइन्टिफिक, विचारपरक, बुद्धिपरक, प्रत्यक्षवादी मान्यता पर टिका हुआ है। अध्यात्म मान्यता पर टिका हुआ नहीं है, सिद्धांत पर टिका हुआ है। यह प्रत्यक्ष है, जो चैलेंज करता

है कि हम जो बात करते हैं, सही करते हैं। आप सही करके देखें। देवताओं के बारे में हम पंचकोश की साधना की बाबत जो बताते हैं। हम खास बातों का जिक्र करते हैं और कहते हैं कि पंचदेव, गायत्री के पाँच मुख, चेतना के पाँच प्राण यह बताते हैं कि ये हमारे अंतर्जगत में रहते हैं और ये हमारे जीवन में समाये हुए हैं। हमारी चेतना में समाये हुए हैं। हमारे शरीर में रक्त समाया हुआ है, मास समाया हुआ है, हड्डियाँ समायी हुई हैं, नसें समायी हुई हैं। कितने सेल्स समाये हुए हैं।

इन सारी—बहुत-सी चीजों को हमारा शरीर समाये हुए है; जिनको हम मन कहते हैं; चेतना कहते हैं; जिनको हम पंचप्राण कहते हैं। पाँच देवताओं की संज्ञा—धारण की दृष्टि से इन प्राणों को देखते हुए इनका नाम पाँच देवता रख दिया। ये देवता सौ फीसदी सही हैं। इनके बारे में शंका करने की गुंजाइश नहीं है। इन देवताओं की पूजा करना शुरू कर दें। इनका भजन करना शुरू करें, उपासना करना शुरू करें, तो हम निहाल हो सकते हैं और मालामाल हो सकते हैं।

मित्रो! अध्यात्म के नाम पर जो सिद्धियाँ और चमत्कार हमको बताए जाते हैं, वे एक-एक कदम पर सही हो सकते हैं; जबकि यह कोई नहीं कह सकता कि यह जो पाँच देवता हमारे भीतर हैं, अगर आपने इनका भजन और अनुष्ठान किया है, तो वे आपको फल नहीं दे सकते। बेटे, आपने भजन और अनुष्ठान का मतलब बहुत छोटा बतला दिया, बड़ा सीमित बता दिया। इससे निराशा होती है।

आपने सारे-के-सारे भजन को दो बातों में सीमित कर दिया। जबान की नोंक की लपालपी ..... बक-बक—भजन पूजा, ऐसी हो गई है। नहीं बेटे! ऐसे कोई भजन-पूजन नहीं होता, जीभ को इधर घुमा लिया, उधर घुमा लिया। जीभ की नोंक से ही अगर सिद्धियाँ मिल गई होतीं, चमत्कार मिल गए होते, इसी से भगवान का भजन और भक्ति हो गई होती, तो बड़े सस्ते में ज्ञान मिल जाता। बड़े सस्ते में बड़ी-बड़ी चीजें मिल गई होतीं। मित्रो! अध्यात्म सस्ता नहीं, महँगा है। लोगों ने जिसे हाथों की हेरा-फेरी मान रखा है, जिससे मतलब है कि मिष्टान्न ऐसे दिखा दिया, धूपबत्ती ऐसे जला ली। चावल यहाँ रख दीजिए, फूल यहाँ रख दीजिए। यह क्या है? यह हाथों की हेरा-फेरी है, वस्तुओं की उलटा-पलटी है। पैसों की उलटा-पलटी है। इस हेरा-फेरी का नाम लोगों ने भजन रखा है। लोगों ने यह मान रखा है कि जीभ की नोंक से कुछ शब्दों को कह देने का नाम भजन है।

पाँच देवताओं की साधना

मित्रो! क्या करना पड़ेगा? इन देवताओं की साधना करनी पड़ती है। साधना कैसे की जाती है? यही तो मैं निवेदन कर रहा था। साधना के लिए जो आदमी समर्थ है, चाहे कलियुग हो, चाहे पुराना जमाना हो, आप जवान हों, चाहे आप बुड्ढे हों, आपको बराबर अनुदान मिलते हुए चले जाएँगे और जिन-जिन ने साधना की क्रिया से चमत्कार पाए हैं, आप चाहें, तो आप भी प्राप्त कर सकते हैं। कैसे प्राप्त कर सकते हैं? इन पाँच देवताओं की साधना करके। ये देवता कौन से हैं?

ऐसे देवताओं का नाम, पता भी नहीं मालूम है। उनका स्थान भी मालूम नहीं है। इसलिए क्रिया और उपासना का

महाभारत लिखने के लिए महर्षि वेदव्यास जी के मन में किसी योग्य व्यक्ति की कामना थी। उनकी वह कामना गणेश जी ने पूरी की। गणेश जी लिखते गए। महाभारत का लेखन कार्य पूरा हुआ तो व्यास जी ने गणेश जी से कहा—"महाभाग! मैंने 24 लाख शब्द बोलकर लिखाए, आश्चर्य है कि इस बीच आप एक शब्द भी न बोले। सर्वथा मौन बने रहे।"

गणेश जी ने उत्तर दिया—"बादरायण, बड़े काम संपन्न करने के लिए शक्ति चाहिए और शक्ति का आधार संयम है। संयम ही समस्त सिद्धियों का प्रदाता है। वाणी का संयम न रख सका होता तो आपका ग्रंथ कैसे तैयार होता?" संयम से ही सभी कार्य संपन्न होते हैं।

विधि-विधान भी नहीं मालूम है, लेकिन अपने भीतर रहने वाले देवताओं के बारे में विधि-विधान हमको पूरी तरीके से मालूम है और मैं इसी बात को कह सकता हूँ, वायदा कर सकता हूँ और वचन दे सकता हूँ कि ये देवता जो भी आपकी मदद करने लायक हैं, उसे पूरी तरह से करेंगे। इससे कम में उपासना की कोई गुंजाइश नहीं हो सकती।

अन्नमय कोश की साधना

मित्रो! ये पाँच देवता कौन हो सकते हैं? ये हैं—आपके पंचकोश। पहला है—अन्नमय कोश। अन्नमय कोश के बारे में मैं कल भी आपको समझा चुका हूँ। अगर आप अन्नमय कोश की साधना करना शुरू करें, तो इसके सत्परिणाम देखकर आप हैरान रह जाएँगे। साधना का अर्थ है—साध लेना, काबू में ले आना। अपने वश में कर लेना। अन्नमय कोश को आप अपने काबू में ले आ सकें, अपने वश में कर सकें, तो आपको मैंने क्या बताया था?

मैंने आपको बताया था कि अन्नमय कोश का प्रवेश द्वार है—जिह्वा यानी मुख। इसको अगर आप काबू में ले आवें, तो आपकी गई हुई सेहत फिर से ठीक हो जाएगी। मैंने आपको चंदगीराम का हवाला दिया था, शैण्डो पहलवान का मैंने हवाला दिया था। गांधी जी का मैंने हवाला दिया था। उनकी सेहत खराब हो गई थी तब उन्होंने एक देवता की उपासना आरंभ की थी। वह देवता कौन था? अन्नमय कोश था।

उन्होंने जीभ की उपासना की और जबान की उपासना की, जिसकी वजह से उनको दीर्घ जीवन मिला। शरीर को साधा जा सके और इंद्रियों पर काबू रखा जा सके। ईमानदारी को अपने मन से मिलाया जा सके, और इसके लिए शरीर के साथ ईमानदारी से श्रम की व्यवस्था की जा सके, तो कमाल हो सकता है और गजब हो सकता है।

मित्रो! यह शरीर हमारे लिए कमाल कर सकता है। क्या-क्या कर सकता है? शरीर के अंगों का इस्तेमाल करना जरूरी है। आलस्य में पड़े हुए, प्रमाद में पड़े हुए नब्बे फीसदी लोग जिंदगी को बरबाद करते रहते हैं। आपने जो काम किया है, उसका लेखा-जोखा बताएँ, तो बताऊँगा कि आपने मुश्किल से दो घंटा रोज का काम किया है, जिसमें आप कहते हैं कि आठ-दस घंटे काम किया, पर ईमानदारी की बात यह है कि सारे-के-सारे काम को जो आप अभी करते हैं, वह एक समझदार आदमी मन से काम करने वाले, तन से काम करने वाले, मेहनत करने वाले आदमी का काम दो घंटे के काम के बराबर है, जिसे आप दस-बारह घंटे में करते हैं।

आप जो मेहनत करते हैं, उस मशक्कत के साथ में मुहब्बत मिली हुई नहीं होती। उसके साथ में तन्मयता मिली हुई नहीं होती; मनोयोग मिला हुआ नहीं होता है; मुस्तैदी मिली हुई नहीं होती; दिलचस्पी मिली हुई नहीं होती। अगर आपके काम में दिलचस्पी मिली हुई होती, तो कल्याण हो जाता।

आप कालिदास के तरीके से बेअक्ल और बेवकूफ होते तो भी आप संपन्न बन जाते। परंतु आपने इन्हें कभी मिलाया ही नहीं। मशक्कत की तो बेमन से। मन लगाया तो मन नहीं लगा? शरीर कहीं लगा और मन कहीं लगा। दोनों को आपने एक साथ मिला दिया होता, तो वे जीवन में चमत्कार दिखाते। आपकी उन्नति होती और सफलता मिलती।

मित्रो! इतना मरने-खटने के बाद भी आपके घरवाले आपसे खुश नहीं हैं। इसलिए मैं आपसे कहता हूँ कि आप मन लगा करके काम करने के अभ्यस्त हो जाएँ, तो आपकी योग्यता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाएगी। आपको मास्टर की जरूरत नहीं है कि मास्टर मिलेगा तो समझदारी से पढ़ाएगा, समझाएगा। आप तबीयत लगाकर काम कीजिए, मन लगाकर काम कीजिए। मन लगाकर काम करते जाएँगे, तो आप अपने काम में इतने माहिर, इतने पारंगत होते चले जाएँगे कि समझदारी भी आपकी बढ़ती चली जाएगी। आप मन लगाकर तो काम कीजिए। मन लगाकर काम नहीं किया बेटे, इसलिए हमारी अन्नमय कोश की उपासना बेकार चली गई। अन्नमय कोश की उपासना अगर हमने की होती, तो हमने नवनिधियाँ पा ली होतीं।

मित्रो! एक और बात मैं आपसे यह कहता हूँ कि अगर आपने अपने कार्य में, क्रियाकलाप में कदाचित् ईमानदारी शामिल कर दी होती, तब बस, फिर आप समझ लीजिए कि त्रिवेणी बन जाती। पहला—श्रम, दूसरा—मनोयोग और तीसरा—ईमानदारी तीनों को मिला देते, तो फिर देखते कि कैसा कमाल होता है; कैसा गजब होता है; कैसे चमत्कार उत्पन्न होते हैं; और आप इसी जिंदगी में, गई-गुजरी जिंदगी में किस तरीके से उन्नति करते हुए चले जाते हैं। सफलता प्राप्त करते हुए चले जाते हैं और दूसरे आदमी जो आपके साथ रहने वाले तमाशा देखते रहते हैं और कहते रहते हैं कि हमारा तो भाग्य नहीं खुला।

आप अपने आस-पास रहने वालों को देखिए कि उनकी मान्यता कैसी है? बया पक्षी का उदाहरण मैं प्राय: देता रहता हूँ। बया का घोंसला आप कंपटीशन में बैठा दीजिए। बाकी सब पक्षियों को एक तरफ रखिए और बया को एक कोने में बैठा दीजिए। तबीयत, मेहनत और मनोयोग से बनाया गया घोंसला कितना खूबसूरत और अच्छा है। उसके बच्चे चैन से अपना दिन गुजार लेते हैं। बारिश हो तो क्या, हवा चले तो क्या, शोर-गुल हो तो क्या? रास्ता चलते हुए लोग कहते हैं कि देखिए यह घोंसला कितना सुंदर है। यह बया का घोंसला है। बया का घोंसला देखकर के लोगों की आँखों में इतनी खुशी होती है, जो गुलाब का फूल देखकर के भी नहीं होती। उसकी कलाकारी की सब तारीफ करते हैं। यह प्रेस्टिज प्वाइंट है।

मन लगाकर करें काम

मित्रो! आदमी मन लगाकर काम करे तो सफल और श्रेष्ठ कार्य किस तरीके से कर सकता है और ईमानदारी को भी इसमें शामिल कर लिया जाए, तो हम कैसे उन्नतिशील बन सकते हैं और कैसे हमारी इज्जत बढ़ती चली जाती है। हर आदमी हमारा सम्मान और सहयोग करने के लिए खड़ा हो सकता है। यह बात मैंने श्रम की बाबत बताई, अन्नमय कोश की बाबत बताई कि हमारी भौतिक उन्नति में हमारा शारीरिक श्रम और शरीर को ठीक तरीके से सँभालने का क्रम किस तरीके से उन्नतिशील बन सकता है।

एक छोटे से बच्चे का किस्सा मैं सुनाना चाहता हूँ। तेरह वर्ष की उम्र में बच्चे के माता-पिता का देहांत हो गया। बिना पढ़ा बच्चा था। पिता के साथ पहले जाता था और सड़क पर बैठकर पुरानी चप्पलें, पुराने जूतों की मरम्मत करता था। और कोई काम वह सीख ही नहीं पाया। पढ़ने भी नहीं जा सका। पिता की मृत्यु हो गई, माँ की मृत्यु हो गई। लड़का अकेला रह गया। कहाँ जाए, क्या करे? वह सड़क पर उसी जगह पर बैठने लगा, जहाँ पर पिता बैठता था। लोगों ने पूछा—"बेटा! तुम्हारे पिताजी जो जूतों की मरम्मत करते थे, अब नहीं आते।" उसने कहा—"मेरे पिता का स्वर्गवास हो गया और आप कृपा करके जूते मरम्मत के लिए हमको दे दीजिए। हम उन्हें अच्छी तरह से बनाएँगे।"

मित्रो! बच्चे ने कहा—"अगर आपको अच्छा न लगे, ठीक से मरम्मत न हो तो हमें पैसे मत देना। अच्छा ठीक है, काम ठीक होगा तो हम आपसे मदद की उम्मीद करेंगे। आप हमें काम देने में मदद कर दें तो हमारा दिन अच्छा होगा।" लोगों ने कहा—"लो, ये हमारे फटे हुए जूते ठीक कर दो।" उस बच्चे ने काम को प्रेस्टिज प्वाइंट बना लिया। उसने कहा कि काम के पैसे ज्यादा मिलते हैं या कम मिलते हैं, इसकी परवाह नहीं। कम पैसा मिलता है, कोई बात नहीं, पर सच्चाई की राह चलूँगा, जिससे आगे भी काम मिलता रहे। बेटे, ऐसा बढ़िया काम करके दिखा कि अपने मालिक को निहाल कर दे।

यह है काम करने की इज्जत, काम करने वाले की आबरू। काम खराब करना—यह बेटे, बहुत गलत है। यह अपनी इज्जत खराब करने के बराबर है। उस बच्चे ने ऐसे बढ़िया ढंग से जूते ठीक किए कि जिनके जूते थे, वे सब उन्हें देखकर दंग रह गए। वे बोले—"हमने तो जूते जहाँ से फटे थे, उसे ठीक करने को ही कहा था।" बच्चे ने कहा—"मैंने सोचा कि केवल फटा हुआ हिस्सा ठीक करूँगा, तो कल दूसरी जगह से फट जाएगा। इसलिए मैंने पूरा जूता ही ठीक कर दिया। मेरा जो पैसा बने, आप दे दीजिए।" उन्होंने कहा—"लड़का बड़ा ईमानदार है और बड़े मन से काम करता है। दो आने की उसकी मजदूरी थी और नौ पैसे उसको दिए। वह खुश होकर चला गया।"

मित्रो! बच्चे ने कहा—"भले ही आप मुझे नौ पैसे की जगह सात पैसा दीजिए, पर अगली बार भी मरम्मत का काम मुझे ही दीजिए। मेरा कोई सहारा ही नहीं है। मेरा कोई हिमायती भी नहीं है। आप मेरे पिता पर विश्वास करते थे, अब मुझ पर विश्वास करें तो अच्छा है।" उन लोगों ने कहा—"हमारा या हमारे मित्र का कोई काम होगा, तो तुम्हें ही काम देंगे।" मित्रो! जीभ की नोंक दिलों को जीत भी सकती है और जीभ की नोंक बिच्छू के डंक की तरह वार भी करती है। उस बच्चे ने ऐसे प्यार से बात की। ईमानदारी से काम किया, तो आदमी उसका नौकर हो गया, गुलाम हो गया और उसका विज्ञापन करने लगा।

अपने ऑफिस में उसने कहा—"देखो भाई! किसी को अपने जूतों की मरम्मत करानी हो तो नीम के पेड़ के नीचे जो बच्चा बैठता है, उससे अपना काम कराना। बड़ा ईमानदार और बड़ा अच्छा लड़का है।" बिना पैसे के उसका विज्ञापन हो गया। लोगों ने कहा—"हाँ! हम उसी से अपना काम कराएँगे।" धीरे-धीरे उस लड़के के पास जूतों के ढेर

लगने लगे। एक दिन लोगों ने कहा—''क्यों रे छोकरे! तू तो ऐसे नए जूते भी बना सकता है।'' हाँ साहब! बना सकता हूँ, पर मेरे पास इतना पैसा कहाँ है कि नए जूते बनाने के लिए सामान खरीदकर लाऊँ? यदि चमड़ा और सामान खरीद सकूँ तो नए जूते भी बना सकता हूँ।

ईमानदारी, जिम्मेदारी और मेहनत

मित्रो! लोगों ने उसे सामान के पैसे दे दिए। वह सामान खरीद लाया और नए जूते बनाए। उनकी माँग इस कदर बढ़ी कि जो भी आए, वह कहे कि हमारा जूता तो तुझे ही बनाना पड़ेगा। धीरे-धीरे उसका काम बढ़ता चला गया और उसकी दुकान बन गई। उसका काम लोगों को इतना पसंद आया कि उसने दुकान बनाने के बाद कंपनी बना ली। आपको मालूम है कि उसका नाम बाटा पड़ा। हिंदुस्तान में जहाँ जाइए, हर जगह बाटा की दुकान मिलेगी।

एक बार मैं हिंदुस्तान से बाहर अफ्रीका गया, वहाँ भी बाटा की दुकानें देखीं। यह क्या है? भगवान की कृपा है। भगवान बेटे, इसी का नाम है। यह अन्नमय कोश में हमारे साथ तीन रूपों में प्रवेश करता है, पहला है—ईमानदारी। दूसरा है—जिम्मेदारी अर्थात मन लगाकर काम करना, काम में दिलचस्पी लेना। तीसरा है—मेहनत, मशक्कत। मेहनत कीजिए, जिम्मेदारी से कीजिए, मन लगा करके कीजिए और ईमानदारी से कीजिए। इन तीन बातों को मिला करके कीजिए, फिर देखिए कि क्या कमाल होता है। क्या गजब होता है और आप इसी जिंदगी में क्या-से-क्या बनते हुए चले जाते हैं।

मित्रो! तीनों को आपने कभी मिलाया नहीं। इनको आपने धूल कर दिया, कचरा कर दिया और आप कर्मफल के लिए रोते हैं और कहते हैं कि हमारा शरीर बीमार पड़ा है। शरीर हमें इसलिए मिला था कि हमारी सेवा करे, सहायता करे, लेकिन यह आपकी सेवा नहीं करेगा, सहायता नहीं करेगा; क्योंकि इसके साथ आपने बदसलूकी की है, बदतमीजी की है। आपका साथ यह नहीं देगा। पंचतत्त्वों का शरीर आपको बहुत तरह की बीमारियाँ देगा और तरह-तरह के दरद देगा। आपको बहुत शिकायत होने वाली है। पेट में पेप्टिक अल्सर होगा, कमर में दरद होगा, जुकाम होगा, कम दिखाई देने लगेगा। अजी! यह क्या बात है? बेटे, यह आपका दंड है कि आपने शरीर के साथ में जो सलूक करना चाहिए था, इसकी शक्तियों को जिस हिसाब से, जिस कार्य के लिए खरच करना था, आपने उस हिसाब से खरच नहीं किया। हमारे शरीर में ऐसे कीमती स्थान हैं, जहाँ से जमा की हुई शक्ति हमारी आँखों से होकर चमकती है, हमारे दिमाग में चमकती है, हमारी वाणी में होकर चमकती है, हमारे कलेजों में होकर चमकती है और हमारी हिम्मत में होकर चमकती है।

एक ऐसा प्रकाश है, जो हमारे भीतर दीपक जैसे जलता है, पर हम क्या कर सकते हैं? हमने तो भीषण जगत में पूरा खरच कर दिया, सारा-का-सारा तेल टपक गया।

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता नऽ ऊर्जे दधातन।
महेरणाय चक्षषे॥
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।
उशतीरिव मातरः॥

—यजुर्वेद 11/50-51

अर्थात—हे जल देवता! आप सुख को प्रदान करने वाले हों। आप हमें बल दें, ताकि हम महान एवं रमणीय ब्रह्मदर्शन कर सकें। आपका जो शुभतम अर्थात अत्यंत कल्याणकारी रस है, हमें उसका सभी प्रकार से भागी बनाएँ। ठीक वैसे ही, जैसे अभिलाषा करने वाली माताएँ अपने शिशुओं को अपने दुग्ध का भागी बनाती हैं।

अब दीपक जलता तो है, टिमटिम करता तो है, पर ठीक से काम नहीं होता। आँखों से दिखाई कम पड़ता है। दिमाग में रोशनी कम, कानों में रोशनी कम, सब जगह रोशनी कम पड़ गई है।

मित्रो! क्या मामला है? साहब! पहले तो हम फर्स्ट डिवीजन आते थे, फिर थर्ड आए, फिर कंपार्टमेंट में आए और अब फेल होने के आसार हैं। बेटे, जो कुछ तेरे हाथ है, वह भी जाने वाला है। क्यों? क्योंकि जो जखीरे तेरे पास हैं, जो जमा पूँजी तेरे पास है, उसे बदतमीजी से खरच करता हुआ चला जाता है। जानवरों के पास जा और जानवरों से

सीख करके आ। मुझे कहने में भी शरम आती है कि मनुष्य जानवरों से भी गया-गुजरा है। जानवरों से पूछ कि काम-वासना के संबंध में आपका क्या ख्याल है? तो साँड़ आपको यह बताएगा कि हम बैलों और गायों के साथ घूमते तो रहते हैं और यदि गाय कुछ कहना चाहती है, तो हम सेवा तो कर देते हैं, पर बाकी गायों की तरफ हम आँख उठाकर भी नहीं देखते। हम जवान हैं तो क्या, हट्टे-कट्टे हैं तो क्या, गाय के साथ रहते हैं तो क्या? पर गाय की इच्छा के बिना, हम गाय के पास भी नहीं जा सकते?

बेटे, आप जानवर होते, तो भी आपने मर्यादा का पालन किया होता, लेकिन आपने अपनी सेहत का सत्यानाश कर लिया। उसके आपने प्राण ही नहीं निकाले, बाकी सब काम कर लिया। हमें हजारों शिकायतें मिलती हैं। यह हमने क्या किया? हमने अपनी तबाही को न्योत-न्योतकर बुलाया। बेटे, यह बात मैं शरीर की बाबत कहता हूँ, अन्नमय कोश की बाबत कहता हूँ। आपने अपनी सेहत खराब कर ली, अपनी बीबी की सेहत खराब कर ली। जो कोई भी आपके संबंधी होंगे, आप उनकी भी सेहत खराब करेंगे। [क्रमशः]

चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथपुरी से दक्षिण की यात्रा पर निकले थे। रास्ते में एक सरोवर के किनारे उन्होंने एक ब्राह्मण को गीता-पाठ करते देखा। वह गीता के पाठ में इतना तल्लीन था कि उसे अपने शरीर की सुध नहीं थी, उसका हृदय गद्गद हो रहा था और नेत्रों से आँसुओं की धारा बह रही थी। उसका पाठ समाप्त होने पर चैतन्य महाप्रभु ने पूछा—"तुम श्लोकों का अशुद्ध उच्चारण कर रहे थे, तुम्हें इसका अर्थ मालूम न होगा, परंतु तब भी तुम इतने भाव-विभोर कैसे थे?" उसने उत्तर दिया—"भगवन्! मैं कहाँ जानूँ संस्कृत। मैं तो जब पढ़ने बैठता हूँ तो ऐसा लगता है कि कुरुक्षेत्र के मैदान में दोनों ओर बड़ी भारी सेनाएँ सजी हुई खड़ी हैं। जहाँ बीच में एक रथ पर भगवान कृष्ण अर्जुन से कुछ कह रहे हैं। उस दृश्य को देखकर मन भाव से भर उठता है।" चैतन्य महाप्रभु ने कहा—"भैया तुमने ही गीता का सच्चा अर्थ जाना है।" यह कहकर उन्होंने उसे अपने गले लगा लिया।

विश्वविद्यालय परिसर से —184

वैश्विक चुनौती के मध्य नूतन पहलें करता विश्वविद्यालय

कोविड-19 के संक्रमण के कारण विश्वस्तर पर फैले दुष्प्रभावों के मध्य भी देव संस्कृति विश्वविद्यालय का परिसर अनेकानेक शैक्षणिक गतिविधियों को अंजाम देता हुआ नजर आता रहा है। यह कर्मनिष्ठा ही देव संस्कृति विश्वविद्यालय को एक विशिष्ट पहचान प्रदान करती है।

इसी भाव को साकार रूप प्रदान करते हुए देव संस्कृति विश्वविद्यालय के पर्यटन प्रबंधन विभाग द्वारा कोविड-19 के प्रभावों व इससे उपजी समस्याओं के समाधान पर मंथन करने के लिए एक दो दिवसीय अंतरराष्ट्रीय वेबिनार का आयोजन किया गया। इस वेबिनार में शैक्षणिक गतिविधियों के साथ-साथ विद्यार्थियों के भविष्य को लेकर भी चर्चा की गई। कायक्रम के पहले दिन पर्यटन विभाग के विभागाध्यक्ष डॉ. अरुणेश पाराशर ने वेबिनार की थीम से सभी को अवगत कराया।

डॉ. पाराशर के अनुसार—भारतीय संस्कृति के सूत्रों द्वारा ही इस समस्या का समुचित समाधान संभव है। प्रकृति व पर्यावरण को महत्त्व देकर सामाजिक जागरूकता की ओर बढ़ना ही आज की परिस्थितियों में बेहतर प्रतीत होता है। वेबिनार के मुख्य अतिथि एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने प्रभावी संदेश देते हुए कहा कि कोविड-19 ने मनुष्य जाति को बेबस कर दिया है। इन परिस्थितियों में मनुष्य को धैर्यवान एवं जिम्मेदार बनने की आवश्यकता है।

उन्होंने कहा कि परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी के संदेश 'हम बदलेंगे तो युग बदलेगा' की ओर मानवता को कदम बढ़ाने ही होंगे। ऐसा करे बिना इस समस्या का सम्यक समाधान संभव नहीं है। परिस्थितियाँ नकारात्मक हों तो भी सम्यक पुरुषार्थ से ये जल्दी ही सकारात्मकता में बदल जाती हैं। इसलिए सभी जागरूक होकर अपना विकास करें।

गढ़वाल विश्वविद्यालय से वेबिनार के रिसोर्स पर्सन प्रो. एस.सी. बागड़ी ने परंपरागत पर्यटन की ओर बढ़ने पर अपना व्याख्यान दिया तो वहीं झाँसी विश्वविद्यालय के प्रो. सुनील काबिया ने इसके प्रभाव व समाधानपरक विषय पर अपनी बात रखी। गढ़वाल विश्वविद्यालय के ही प्रो. एस.के. गुप्ता ने एविएशन सेक्टर पर पड़े प्रभावों के साथ जीवन के महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर चर्चा की। ऑस्ट्रेलिया के स्वीनबर्न विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति प्रो. अजय कपूर ने वैज्ञानिक ढंग से कोविड-19 की व्याख्या एवं इससे संबंधित नीति-नियमों पर चर्चा की।

कार्यक्रम के दूसरे दिन विश्वविद्यालय के छात्र कल्याण विभाग के संकायाध्यक्ष प्रो. संदीप कुमार ने जीवन जीने की कला के विषय में बताया और कहा कि सकारात्मकता ही हमें आगे बढ़ा सकती है। दूसरे वक्ता रोहतक विश्वविद्यालय के प्रो. आशीष दहिया ने ई-लर्निंग के बारे में सभी को अवगत कराया एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय के वर्तमान कार्यों की प्रशंसा की।

आई.एम.एस. विश्वविद्यालय के प्रो. विनय राणा ने होटल उद्योग पर पड़ रहे प्रभावों व इनके समाधान पर चर्चा की। दिया राजस्थान के वरिष्ठ कार्यकर्त्ता प्रो. विजयवर्गीय ने आत्मनिर्भर भारत पर अपना प्रस्तुतीकरण किया। उन्होंने बताया किस प्रकार गाँव आज आत्मनिर्भर बन सकते हैं।

पूरे कार्यक्रम में कुल 2600 पंजीयन हुए थे, जिनमें 2000 लोग लाइव पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय फेसबुक पेज के माध्यम से इस कार्यक्रम को देख रहे थे। लगभग 6 देशों के साथ भारत के 35 विश्वविद्यालय इस वेबिनार से निरंतर जुड़े रहे। कार्यक्रम समापन के अवसर पर विभागाध्यक्ष डॉ. उमाकांत इंदौलिया ने कहा कि प्रस्तुत वेबिनार का उद्देश्य शैक्षणिक गतिविधियों के साथ-साथ विद्यार्थियों के रोजगार व उनके भविष्य पर भी चर्चा करना था। इस वेबिनार से पर्यटन उद्योग के साथ-साथ समाज को भी नई दृष्टि मिली। अंत में डॉ. इंदौलिया ने सभी वक्ताओं, अतिथियों, प्रतिभागियों व विश्वविद्यालय के समस्त सदस्यों का आभार व धन्यवाद ज्ञापित किया। पूरे कार्यक्रम को पर्यटन विभाग के विद्वानों के साथ-साथ बहुत से गणमान्य व्यक्तियों द्वारा सराहा गया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा की जा रही इन महत्त्वपूर्ण गतिविधियों के क्रम में एक और अध्याय तब जुड़ा, जब देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा विश्व के सबसे बड़े संगठन कॉमनवेल्थ जो 54 देशों एवं 2.2 खरब लोगों का संगठन है—इसके द्वारा आयोजित एक अत्यंत प्रतिष्ठित वेबिनार में भागीदारी की गई। इस वेबिनार में 54 देशों के उच्चस्तरीय प्रतिनिधियों ने भाग लिया। ब्रिटेन की रॉयल फेमिली के प्रिंस चार्ल्स ने इस वेबिनार का उद्घाटन करते हुए इसे एक ऐतिहासिक अवसर बताया। इस अवसर पर विश्वभर से आमंत्रित पाँच प्रमुख वक्ताओं में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति को भी भारतीय संस्कृति विषय पर बोलने के लिए आमंत्रित किया गया था।

'फेथ इन दि कॉमनवेल्थ' विषय पर आयोजित इस वेबिनार में सामाजिक जीवन में नैतिक मूल्यों की अवधारणाओं विषय पर गंभीर विचार-विमर्श हुआ। इस कार्यक्रम का शुभारंभ प्रिंस चार्ल्स के विशेष वीडियो संदेश के माध्यम से हुआ। इस अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने कहा कि समाज को जोड़ने के लिए जिस तरह कॉमनवेल्थ संगठन ने पहल की है, वह प्रशंसनीय है। इस अवसर पर समाज को एक करने में परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य के आदर्श वाक्य '**एकता, समता, शुचिता तथा ममता**' का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि विश्व-वसुधा को इस आदर्श चिंतन से एवं प्रेम और सहकार के साथ ही एकजुट किया जा सकता है।

इस अवसर पर कॉमनवेल्थ जूइस काउन्सिल के सीईओ क्लाइव लावटन, लॉर्ड मेंडलसन, लंदन की बिशप डेम मुलाली, यहूदियों के प्रमुख चीफ रबाई मर्विस, आर्चबिशप ऑफ कंबांडा भी वक्ताओं के रूप में आमंत्रित थे। यह संपूर्ण भारत के लिए एक गौरव का क्षण रहा, जब इस महत्त्वपूर्ण अवसर पर भारत से एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में देव संस्कृति विश्वविद्यालय, शांतिकुंज, गायत्री परिवार एवं परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य के विचारों को साझा करने के लिए प्रतिकुलपति जी को आमंत्रित किया गया। इस उपलब्धि पर श्रद्धेयद्वय डॉ. प्रणव पण्ड्या एवं शैलदीदी ने अत्यंत हर्ष की अभिव्यक्ति प्रदान की।

इसी क्रम में कामनवेल्थ सचिवालय के 55वें वार्षिकोत्सव के अवसर पर भारतीय संस्कृति के प्रचारक के रूप में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी को मुख्य वक्ता के रूप में आमंत्रित किया गया था। 01 जुलाई को आयोजित इस वेबिनार में कॉमनवेल्थ से जुड़े 54 देशों के उच्चस्तरीय प्रतिनिधि शामिल रहे।

अपने संबोधन में प्रतिकुलपति जी ने कहा कि वर्तमान के अंधकार भरे समय का समाधान अध्यात्म से ही संभव है। उन्होंने कहा कि विश्व इस समय विषम परिस्थिति से गुजर रहा है। ऐसे में सबकी निगाहें भारत पर आकर टिक गई हैं। सभी ने भारत की नेतृत्वक्षमता एवं कौशल पर विश्वास जताया है। उन्होंने कहा कि आज मनुष्य जगत की आवश्यकता है कि वह भारतीय संस्कृति के 'वसुधैव कुटुंबकम्' के भाव को शिरोधार्य करे और कॉमनवेल्थ जैसे विस्तृत तथा सौहार्दपूर्ण समूह में आध्यात्मिक चिंतन का संचार हो।

परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी के चिंतन को उद्धृत करते हुए प्रतिकुलपति जी ने कहा कि वर्तमान की विषम परिस्थितियाँ हमारे भीतर भय और हताशा नहीं ला सकतीं, बल्कि ये परिस्थितियाँ हमें कुछ कर गुजरने के लिए प्रेरित करती हैं। इसके साथ ही उन्होंने परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी द्वारा प्रतिपादित '**एक राष्ट्र, एक संस्कृति**' के विचार को भी सभी के सम्मुख रखा।

इस वेबिनार को फ्रेंड्ज ऑफ कॉमनवेल्थ नामक एक संस्था ने आयोजित किया था, जिसमें मुख्य वक्ता के रूप में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी के अतिरिक्त कॉमनवेल्थ की प्रमुख सचिव बैरॉनेस पैट्रिसिया, स्कॉट्लैंड को आमंत्रित किया गया था। उल्लेखनीय है कि प्रतिवर्ष 01 जुलाई को कॉमनवेल्थ सचिवालय दिवस के रूप में मनाया जाता है। कॉमनवेल्थ विश्व के चुनिंदा 54 देशों का एक समूह है। इस समूह में भारत का एक विशिष्ट स्थान है।

इन अंतरराष्ट्रीय उपलब्धियों के साथ-साथ देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा एक अभूतपूर्व शैक्षणिक पहल भी की गई एवं विश्वविद्यालय के द्वारा कोविड-19 के परिचय एवं बचाव को लेकर एक प्रश्नपत्र पढ़ाए जाने का प्रस्ताव पारित किया गया। कोविड-19 की वैश्विक समस्या को देखते हुए बहुत से विभागों ने इसे अपने पाठ्यक्रम में एक प्रश्नपत्र के रूप में लेने हेतु प्रस्ताव दिया था, जिसे विश्वविद्यालय की समिति द्वारा स्वीकार किया गया था।

विश्वविद्यालय का पर्यटन विभाग इस बिंदु को लेकर विशेष रूप से जागरूक रहा। विभाग के विभागाध्यक्ष के अनुसार—आज पर्यटन एवं आवभगत के सभी क्षेत्र समस्याओं के दौर से गुजर रहे हैं। पर्यटन की सारी गतिविधियाँ सीमित होने का प्रभाव समस्त विश्व पर पड़ा है। इस बिंदु पर विद्यार्थियों को जाग्रत करने हेतु एक नॉन क्रेडिट विषय के रूप में इसे पर्यटन प्रबंधन विभाग द्वारा पढ़ाया जाएगा।

इसमें विद्यार्थियों को यह बताया जाएगा कि इस परिस्थिति में अगर सामंजस्य करना हो तो किस तकनीक से सामंजस्य किया जाए। पर्यटन में प्रयोग आने वाली परंपरागत व नई तकनीकों को भी इस पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है। इस समय योग, पर्यटन, आयुर्वेद, जीवनशैली प्रबंधन इत्यादि विषयों का पर्यटन क्षेत्र में महत्त्व बढ़ा है। जिम्मेदारीपूर्ण पर्यटन एवं स्वास्थ्य पर्यटन का विकास ही अब नई पर्यटन प्रणाली का आधार कहा जा सकता है।

इसी क्रम में योग विभाग भी प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने हेतु एक विशेष पाठ्यक्रम को बना रहा है। इस विषय में कोविड-19 की समस्या को समझाते हुए विभिन्न प्रकार के आसन, प्राणायाम, मुद्रा तथा ध्यान इत्यादि के माध्यम से प्रतिरोधक क्षमता कैसे बढ़ाई जाए—इस विषय पर प्रकाश डाला जाएगा। योग विभाग के विभागाध्यक्ष ने इस हेतु एक विशेष समिति का गठन किया है।

इसके साथ ही विश्वविद्यालय का मनोविज्ञान विभाग भी मनोवैज्ञानिक तकनीकों के द्वारा कैसे कोविड-19 के डर को खतम किया जाए, इस विषय पर एक पाठ्यक्रम का निर्माण कर रहा है। इसके अलावा अन्य विभाग जैसे—कंप्यूटर विभाग, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, इतिहास विभाग, ग्राम-प्रबंधन विभाग, पर्यावरण विज्ञान विभाग, हिंदी विभाग एवं अन्य विभागों ने भी इस विषय को अपने पाठ्यक्रम में शामिल करने हेतु विशेष रणनीति बनाई है।

इस अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने कहा—"दूरगामी भविष्य को देखते हुए एक व्यक्ति को समग्र रूप से मजबूत करने हेतु इस प्रकार का प्रयोग एक मील का पत्थर साबित होगा। इस विशेष पाठ्यक्रम के द्वारा विद्यार्थी भी समाज में सकारात्मक परिणाम ला सकेंगे।" ❑

यशोधर्म एक प्रसिद्ध संत थे। अनेक शिष्य उनसे ज्ञान प्राप्त करने के लिए आतुर रहते थे। एक दिन जब वे अपने शिष्यों को पढ़ा रहे थे तो एक शिष्य बोला—"गुरुदेव! अध्यात्म मार्ग में गति पाने के लिए व्यक्ति को क्या करना चाहिए?" शिष्य का प्रश्न सुनकर संत यशोधर्म बोले—"वत्स! जैसे पक्षी को उड़ान भरने के लिए दो पंखों की आवश्यकता होती है, उसी तरह अध्यात्म का मार्ग पाने के लिए भी व्यक्ति को संकल्प एवं समर्पणरूपी दो पंखों की आवश्यकता होती है। इनके अभाव में कोई भी व्यक्ति अध्यात्म की राह नहीं पा सकता।"

यह सुनकर शिष्य बोला—"गुरुवर! क्या अकेले संकल्प या समर्पण से अध्यात्म लाभ नहीं हो सकता?" संत यशोधर्म ने उत्तर दिया—"वत्स! जिस तरह नौका से नदी पार जाना हो तो दोनों पतवारों से नाव चलानी पड़ती है, उसी तरह अध्यात्म मार्ग के लिए भी संकल्प व समर्पण, दोनों का होना आवश्यक है।" शिष्य अपने गुरु की बात का मर्म समझ गया।

अपनों से अपनी बात

युग-परिवर्तन की वेला में निर्णय का समय अब आ पहुँचा

मनुष्य को जीवन में मिलने वाली सफलताओं का श्रेय विभिन्न प्रक्रमों को दिया जाता रहा है। कोई उसके लिए भाग्य की प्रबलता को मुख्य मानता है तो किसी के लिए मानवीय पुरुषार्थ सर्वोपरि है। कहीं पर दैवी अनुग्रह से सर्वोपरि स्थान मिलने की बात आती है तो कहीं साधनशीलता को उपयोगी बताया जाता है। कारण कुछ भी हो, एक बात तो निश्चित है कि सफलता मिलती उन्हें ही है, जो सही समय पर सही निर्णय ले पाने में सफल होते हैं।

समय बीत जाने के उपरांत पुरुषार्थ दिखाने वाले हास-परिहास का शिकार होते हैं तो समय सही न होने पर भाग्य व दैवी अनुग्रह भी मनुष्य से किनारा करके निकल जाते हैं। समय का मूल्य समझने वाले, समय की महत्ता पहचानने वाले ही सौभाग्यशाली कहे जाते हैं। इसीलिए इतिहास ऐसे एक नहीं, अनेक उदाहरणों से भरा पड़ा है जहाँ समयानुसार निर्णय लेने वाले श्रेय, सम्मान व सौभाग्य के अधिकारी बने।

वर्तमान समय में भी एक ऐसा ही समयानुकूल निर्णय लेने की आवश्यकता मनुष्य के लिए आन पड़ी प्रतीत होती है। आज काल हमसे यह माँग करता है कि हम व्यक्तिगत स्वार्थों व आदर्शों के प्रति निष्ठा में से किसी एक का वरण करें। लोभ-लिप्सा व श्रद्धा-निष्ठा में अनंत काल से चला आ रहा संघर्ष एवं देवासुर संग्राम सर्वविदित है।

प्रत्येक युग में ऐसी परिस्थितियाँ प्रकट होती हैं जब हमें इन दोनों प्रवृत्तियों में से एक का चयन करना पड़े। दिखने में कष्टसाध्य प्रतीत होते हुए भी धर्म का साथ चुनने वाले कभी घाटे में नहीं रहे हैं। मूल्यों के प्रति निष्ठा, ईश्वरीय व्यवस्था के प्रति आस्था व गुरु आदेश के प्रति श्रद्धा को धर्म मानने वाले ही अंततः विजय का वरण करते हैं व देवत्व की ध्वजा को उठाने के कारण सत्यगामी बनते हैं।

मनुष्य का अंतर्जगत दोनों ही तत्त्वों को स्थान देता है। एक को शुभ, दूसरे को अशुभ, एक को उन्नति का कारण दूसरे को पतन का मार्ग, एक को देवत्व का प्रकाश तो दूसरे को असुरता का अँधेरा कहा जाए तो गलत नहीं होगा। जिसे अंतर्द्वंद्व कहा जाता है, वह इन्हीं दो विरोधी तत्त्वों के मध्य चलता आ रहा संग्राम है। मनुष्य के सामने ये दोनों मार्ग सदा से खुले रहे हैं, एक श्रेय दिलाता तो दूसरा प्रेय बढ़ाता है। एक तात्कालिक लाभ दिलाता है, परंतु दीर्घकालिक विनाश की व्यवस्था को तैयार करता है तो दूसरा पहले तो कठिनाइयाँ प्रस्तुत करता है, परंतु अनंतर में शांति, तृप्ति-तुष्टि का उपहार प्रदत्त करता है।

बहेलिए के जाल में पंछी तात्कालिक लाभ की आशा से ही आ फँसते हैं। आटे की गोली खाने के चक्कर में मछली अपनी गरदन ही फँसा बैठती है। चना निकालने आया बंदर अपनी गरदन घड़े में फँसाकर गुलामी का दंश भोगता है। पिंजरे में बँधी बकरी को खाने के प्रयास में जंगल का राजा सिंह भी सर्कस का जानवर बनकर रह जाता है।

तात्कालिक रूप से लाभ मिलने का लालच मन में जगाने वाले प्रलोभन अदूरदर्शितापूर्ण होते हैं; क्योंकि उनसे भविष्य में दुःख, कष्ट व पीड़ा के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं लगता। उपभोग की आतुरता में लोग अपना धन, सम्मान, स्वास्थ्य से लेकर आने वाले जन्मों की व्यवस्था को बिगाड़ बैठते हैं, इसे किसी प्रकार दूरदर्शी कदम नहीं कहा जा सकता है।

जिनमें पेड़ की तरह ऊँचा उठने की अभीप्सा हो, उनमें बीज की तरह गलने का साहस भी होना चाहिए। जिन पत्थरों में स्वयं पर हथौड़े झेलने का साहस होता है, वे ही मूर्ति की तरह तराशे जाते हैं। जिनमें धाराओं के चीरने की ताकत होती है, वे ही तैराक बन पाते हैं। प्रारंभ में चुनौतियों का वरण करने वाले, धर्म-नीति, सदाचार के पथ पर बढ़ने वाले आगे चलकर प्रगति-उन्नति को प्राप्त करते हैं। परमार्थ के मार्ग को चुनने वाले कभी हानि में नहीं रहते। वे अपने व्यक्तित्व को भी परिष्कृत करते हैं व संसार की उन्नति के संवाहक भी बनते हैं।

इस द्वंद्व का निराकरण बुद्धि व तर्कों के द्वारा संभव नहीं है। प्रत्यक्ष रूप से उपभोग तो दिखाई पड़ते हैं। पैसे की

चमक, पद का जलवा, सुख के साधन—आँखों से देखे, कानों से सुने व इंद्रियों से उपभोग किए जा सकते हैं। अंतरात्मा की भूख व उसकी छटपटाहट को दूर करने के लिए सांसारिक सुविधाओं का अंबार लगा दिया जाता है।

ऐसा करने के लिए बुद्धि, तर्कों की फौज खड़े कर देती है। मन कहता है कि सारी दुनिया यही कर रही है—तुम नहीं करोगे तो कौन-सा दुनिया बदल जाएगी? साथी, सहयोगी, संबंधी भी इस पथ को व्यावहारिक कहकर भविष्य की चिंता करने के नाम पर जो बन पड़े जोड़ो; ऐसे नहीं तो, वैसे जोड़ो की सलाह देते हैं। अनीति से धन प्राप्त होता है तो लोग खुशामद पर उतर आते हैं। पद की अकड़ बढ़ती है तो रास्ते चलते लोग सलाम ठोंकते हैं।

जब तक जाग्रति हो तब तक बुद्धि, तर्क के सहारे से संसाधनों को इकट्ठा करने के लिए जमा यह कारोबार इतना बढ़ चुका होता है कि उससे दूर निकल पाना तो दूर, ऐसा सोच पाना भी बहुतों के लिए सहज संभव नहीं होता।

देवत्व के पथ का चयन करने वाले, अपने मन को ऐसे तर्कों को प्रस्तुत करने पर यह कहकर समझाते हैं कि विधाता ने हमें मनुष्य का जीवन एक ऊँचे उद्देश्य की पूर्ति के लिए दिया है। अनेक योनियों में भटकने के बाद यह मनुज तन मिला है, क्षुद्र स्वार्थों के लिए इसे गँवा देना किसी भी स्थिति में दूरदर्शिता नहीं कही जा सकती। बुद्धिमत्ता इसी में है कि हमें जो जीवन-संपदा विश्व-वसुधा को ऊँचा उठाने के लिए उसे सभ्य, समुन्नत बनाने के लिए मिली है, हम उसका उपयोग मनःस्थिति विकसित करने व स्वर्गीय परिस्थितियों के निर्माण में करें। अनेक जन्मों में भटकने के कारण जो अपूर्णता हमारे अंदर आ गई है, उसे पूर्णता में बदलने की संभावना इसी मानवीय काया में है, अन्यत्र कहीं नहीं। हमें और कुछ नहीं मिले तो भी आत्मसंतोष व लोक-सम्मान ही अपने आप में कुछ ऐसी उपलब्धियाँ हैं, जिनके आधार पर अनेक जन्मों से चढ़े कर्मों के कर्ज को चुकाया जा सकता है। बार-बार मन को ऐसा समझाने पर एक दिन वह भी साथ देने को राजी हो जाता है।

तात्कालिक लाभ का जो फैला हुआ आकर्षण दिखाई पड़ता है, वह माया के छलावे के अतिरिक्त कुछ और है नहीं। त्रिलोक स्वामी रावण व समस्त आर्यावर्त्त पर कब्जा करके बैठे दुर्योधन जब इस संपदा को साथ न ले जा सके तो अन्य किसी के लिए ऐसा कर पाना संभव होगा।

संपदा का साथ ठहर पाना संभव नहीं है। पद का रुतबा पद रहने तक ही रहता है, उपरांत नहीं। पद विशेष के कारण किसी को बीमारियों के आने में या काल-कवलित होने में कोई छूट मिली हो, ऐसा संभव नहीं है। इंद्रियलिप्सा के सारे आकर्षण चाहे वो नशा हो या वासना, परिणाम में रोगों, शोकों, अपमान व तिरस्कार के अतिरिक्त कुछ लेकर नहीं आते। साथ में तो मात्र मनुष्य के शुभ कर्म व उनके परिणामस्वरूप जन्मी कीर्ति ही जाती है।

तृष्णा थोड़ी देर के लिए ललचाती है, फिर गायब हो जाती है। जीभ का चटोरापन हो या इंद्रियजन्य कामुकता, ये सभी अल्पकाल के लिए स्वर्णमृग की तरह लुभाते हैं और एक बार उनके जाल में फँस जाने पर माया के मारीच की तरह प्रसन्न होते हैं। सुखी मात्र वे ही रहते हैं, जो इस सुरदुर्लभ काया के रूप में मिले सौभाग्य का वरण करते हैं। समयानुसार सही निर्णय लेते हैं। आंतरिक तृष्णाओं को तिलांजलि देकर आत्मिक उत्कृष्टता के सहगामी बनते हैं।

संतुलित, समग्र व उत्कृष्ट व्यक्तित्व के रूप में मिली संपदा—हाथों में करोड़ों रुपये होकर भी विक्षुब्ध मनःस्थिति होने से कहीं बढ़कर के है। लालच की आग सब कुछ स्वाहा कर देने पर भी अनवरत जलती रहती है, पर शांत मनःस्थिति की शीतलता कुछ न होने पर भी स्वयं को तृप्त व तुष्ट अनुभव कराती है। ऐसा सौभाग्य मात्र उन्हें मिलता है, जो दैवी गुणों को धारण करते हैं व तपस्वीसाधक की मनःस्थिति को चुनते हैं।

युग निर्माण योजना के एक अंग के रूप में चल रहे गायत्री परिवार की प्रत्येक आत्मा, अपने भीतर इन्हीं देवत्व की संभावनाओं को समेटे हुए है। इस परिवार की प्रत्येक आत्मा यह जानती है कि उसे यह जीवन उत्कृष्ट परंपराओं की पुनर्स्थापना के लिए मिला है। सांसारिक साधनों की दृष्टि से गायत्री परिवार के सदस्य बहुत समृद्ध न भी दिखते हों, परंतु उनकी आंतरिक अमीरी कुछ ऐसी है कि उनसे देवता भी ईर्ष्या करने को विवश हो जाएँ।

गायत्री परिवार के कार्यकर्त्ताओं को संरक्षण-मार्गदर्शन देने का कार्य स्वयं महाकाल शिव करते हैं और ईश्वर अपनी भुजाएँ पसारे गोद में चढ़ाने का व छाती से लगाने का सौभाग्य देते हैं। हमारे परिवार का प्रत्येक सदस्य लोभ-मोह के बंधनों की हथकड़ी को त्याग, स्वार्थपरता की क्षुद्रता को

लात मार—मानवता और दिव्यता के पथ पर बढ़ने का साहस रखता है।

कुछ ऐसे भी हो सकते हैं, जो अभी भी ऊहापोह की स्थिति में हों। उन्हें सब कुछ भूल देवत्व के मार्ग पर दौड़ पड़ने की आवश्यकता है। जो गुजर गया हो, गुजर गया; उस पर चिंता करने, ग्लानि करने, पश्चात्ताप करने की आवश्यकता नहीं। अभी भी अवसर गया नहीं है। इन पंक्तियों को पढ़ने के साथ ही यह संकल्प मन में उभरना चाहिए कि अब जीवन की दिशाधारा बदली जाएगी। गायत्री परिवार के हम सदस्य हैं तो अब मूर्च्छा का जीवन न जिएँगे।

जिस जीवन रीति की हमसे अपेक्षा है, उसके निर्वाह के लिए सही संकल्प व साहस मन में उभारेंगे। जीवन सादा बनाएँगे, आवश्यकताएँ संतुलित करेंगे, चिंतन को श्रेष्ठ बनाएँगे, लोभ व मोह की अँधेरी गलियों में भटकने के स्थान पर उस संपदा का उपयोग अंशदान के द्वारा लोक-मंगल के कार्यों में लगाएँगे। पूरा समय न भी दे सकें तो सप्ताह का एक दिन या वर्ष का एक माह, पूज्य गुरुदेव के उद्देश्यों को पूरा करने में अवश्य लगाएँगे।

ऐसे कुछ शुभ संकल्प मन में उभर निकले तो देवत्व की राहें आज से ही प्रशस्त होनी शुरू हो जाती हैं। यदि ऐसा हो सके तो अपने इस दिव्य परिवार से एक नहीं, सहस्त्रों हुतात्माएँ भगवान महाकाल के इस युग-परिवर्तन के महायज्ञ में अपनी आहुतियाँ प्रदान कर सकती हैं। जाग्रत आत्माएँ कान लगाकर सुनेंगी तो उन्हें पूज्य गुरुदेव व वंदनीया माताजी के स्वर बस यही संकल्प माँगते दिखाई पड़ेंगे। वैसा कर पाने पर मन में जो गर्व व संतोष का भाव उभरेगा, उसकी तुलना सप्तलोकों की संपदा मिल जाने से भी नहीं की जा सकती है।

यह वेला युग-परिवर्तन की वेला है। इसमें देवत्व या असुरता, परमात्मा या माया, श्रद्धा या लिप्सा, समर्पण या संसार में से एक का वरण हमें करना ही होगा। जो सो रहे हैं वो सोते रह सकते हैं, पर जो जागे हुए हैं, गायत्री परिवार का अंग हैं यह बात उनसे कही जा रही है, ताकि वे स्वयं आगे बढ़ें व औरों का पथ प्रशस्त करें। ❑

वाजिश्रवा ने अपने पुत्र नचिकेता के लिए यज्ञ-फल की कामना से विश्वजित यज्ञ आयोजित किया। इस यज्ञ में वाजिश्रवा ने अपना सारा धन दे डाला। दक्षिणा देने के लिए जब वाजिश्रवा ने गौएँ मँगाईं तो नचिकेता ने देखा वे सब वृद्ध और दूध न देने वाली थीं, तो उसने निरहंकार भाव से कहा—"पिताजी निरर्थक दान देने वाले को स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती।" इस पर वाजिश्रवा क्रुद्ध हो गए और उन्होंने अपने पुत्र नचिकेता को ही यमाचार्य को दान कर दिया।

यम ने नचिकेता से मिलने पर कहा—"वत्स! मैं तुम्हें सौंदर्य, यौवन, अक्षय धन और अनेक भोग प्रदान करता हूँ।" किंतु नचिकेता ने कहा—"जो सुख क्षणिक और शरीर को जीर्ण करने वाले हों, उन्हें लेकर क्या करूँगा, मुझे आत्मा के दर्शन कराइए। जब तक स्वयं को न जान लूँ, वैभव-विलास व्यर्थ हैं।"

साधना के लिए आवश्यक प्रबल जिज्ञासा, सत्यनिष्ठा और तपश्चर्या का भाव देखकर यम ने नचिकेता को पंचाग्नि विद्या सिखाई, जिससे नचिकेता ने आत्मसाक्षात्कार के ब्रह्मपद को प्राप्त किया।

वृक्ष गंगा अभियान के अंतर्गत वर्ष—2020 का एक विशेष अभियान
गृहे-गृहे लघु आरोग्य वाटिका का निर्माण

कोविड-19 जैसी विश्वव्यापी महामारी से जीवनरक्षा एवं जीवनीशक्ति के अभिवर्द्धन के लिए
सभी परिजन अपने-अपने घर पर गमलों में जीवनीशक्तिवर्द्धक वनस्पतियों
यथा--तुलसी, अमृता (गिलोय), घृतकुमारी (एलोवेरा), आज्ञाघास, वासा (अडूसा), हलदी, अदरक, कालमेघ, शरपुंखा
आदि औषधियों से युक्त 'लघु आरोग्य वाटिका' का निर्माण करें।
संपर्क में आने वाले स्वजनों को भी इस अभियान के लिए प्रेरित-प्रोत्साहित करें।

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

प्र. ति. 01-09-2020
Regd No. Mathura-025/2018-2020
Licensed to Post without Prepayment
No: Agra/WPP-08/2018-2020

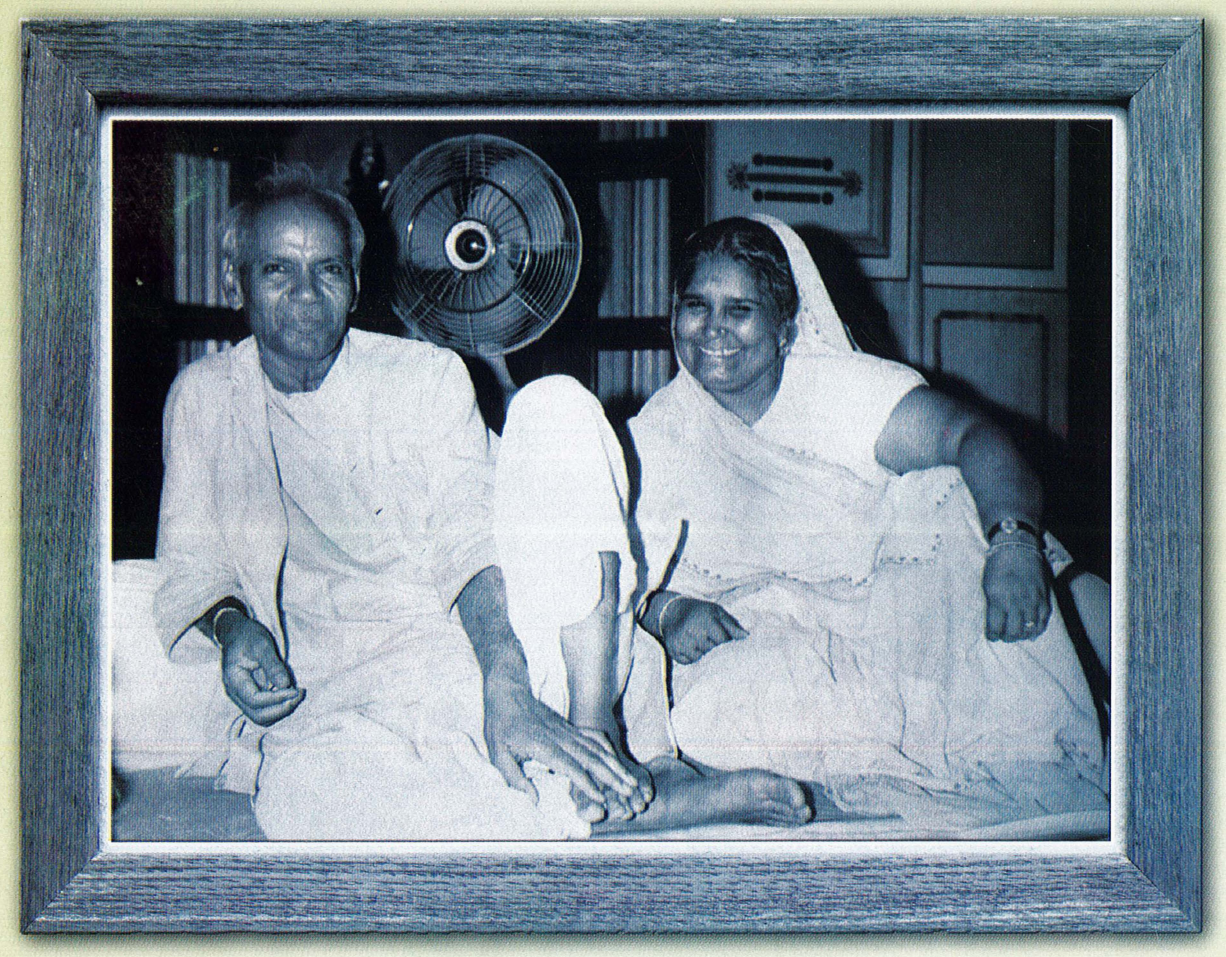

आंतरिक दुष्प्रवृत्तियों से लेकर प्रकृतिगत विषाणु एवं आस-पास विचरने वाले सहज दृष्टि से न दीखने वाले दुष्ट हमारे ऊपर टूट पड़ेंगे। उनसे निपटने का साहस तथा उन्हें नष्ट, निरस्त करने की तत्पर क्षमता हमारे अंदर होनी चाहिए। उसे भी अपना आवश्यक धर्म मानकर चलना चाहिए।

-- पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक – मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा–281003 से प्रकाशित। संपादक – डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष–0565-2403940, 2400865, 2402574 मोबा.–09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल– akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org